निकृष्टतम-स्वार्थी तथा क्रूर प्राणी : मनुष्य

(मनुष्य के अंधकार पक्ष का प्रकाशन)

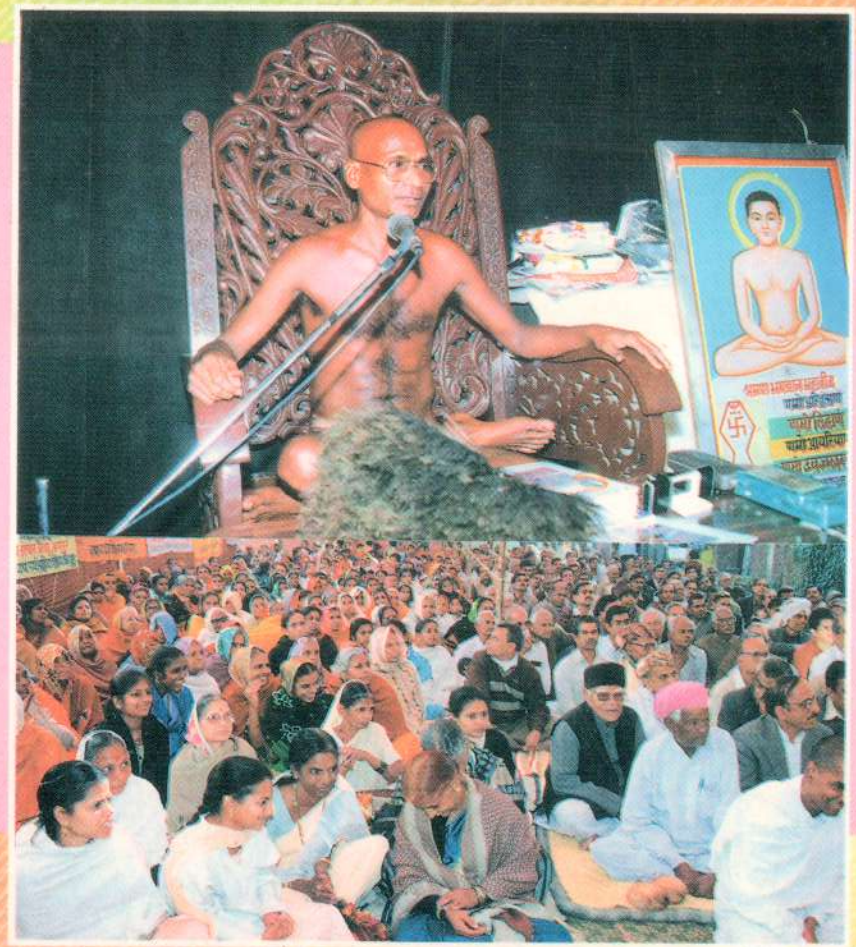

धर्मसभा को सम्बोधीत करते हुए आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दीजी

निकृष्टतम-स्वार्थी तथा क्रूर प्राणी : मनुष्य

(मनुष्य के अंधकार पक्ष का प्रकाशन)

ज्ञानदानी श्री कांतिलाल शांतिलाल झवेरी (प्रतापगढ़ निवासी तथा मुंबई और अमरिका प्रवासी) स्व अर्थ से प्रकाशित ग्रंथ विमोचन के अवसर पर आ. श्री कनकनंदीजी को भेंट स्वरूप ग्रंथ प्रदान करते हुए। अभी तक आपने गुरुदेव के पाँच ग्रंथ प्रकाशित करवाये हैं।

लेखक

आचार्यरत्न कनकनन्दीजी गुरुदेव

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान तथा
धर्म दर्शन सेवा संस्थान–ग्रंथांक 131

निकृष्टतम-स्वार्थी तथा क्रूर प्राणी : मनुष्य

(मनुष्य के अंधकार पक्ष का प्रकाशन)

पावन प्रसंग – भगवान् महावीर की 2600वीं जन्मजयन्ती

लेखक – आचार्यरत्न श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

संत दीपक के समान स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाश देते हैं, साथ–साथ भले–बुरे पदार्थों को भी प्रकाशित करते हैं और सत्साहित्य दर्पण के समान दूसरों के भले–बुरे प्रतिबिम्ब को दर्शाते हैं। यह उनका सहज स्वभाव है। यह उनका सुगुण है, दुर्गुण नहीं हैं। यदि ऐसा वे नहीं करते हैं तो वह उनका दुर्गुण है। प्रकाश से भले–बुरे पदार्थों का ज्ञान करके भले को स्वीकारना एवं बुरे को त्याग करना ज्ञानी, गुणियों का सहज स्वभाव है। जैसा कि कोई अपना मुख स्वच्छ करने के लिए दर्पण देखता है और प्रतिबिम्ब में जहाँ धब्बा दिखाई देता है उसके माध्यम से वह स्व–मुख से धब्बे को साफ करता है। ऐसे ही काम मैं इस कृति के माध्यम से करना चाहता हूँ। इसमें मुख्यतः मनुष्य के धब्बे भाग को प्रतिबिम्बित किया है जो धब्बे मनुष्य में हैं। धब्बों को परिमार्जित करके मानव–महामानव–भगवान् बने ऐसी महति, पवित्र भावना के साथ

– आचार्यरत्न कनकनंदीजी गुरुदेव

मूल्य : (ज्ञान प्रचारार्थ आपकी सहयोग राशि) – 10 रू.
प्रथम संस्करण : 2001 प्रतियाँ 1000
www.jain kanaknadhi.org.
E-Mail - info@jainkanaknadhi.org.
Jain Kanaknandhi@rediffmail.com
Pass word - Kanaknandhi
1. धर्म–दर्शन–विज्ञान सोध संस्थान – बड़ैत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलुम्बर, मुम्बई)
2. धर्म दर्शन सेवा संस्थान – उदयपुर (राज.),
पंजीयन क्रमांक / 18 / उदयपुर01-02

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान–

(1) **श्री सुशीलचन्द्रजी जैन– फोन. नं.** (01234) 62845
'धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध संस्थान' निकट दि. जैन धर्माशाला, बड़ौत

(2) **श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमलजी जैन**
4–5 आदर्श कॉलोनी पुलाँ, उदयपुर (राज.)फो. नं. (0294) 440793

(3) **श्री गुणपालजी जैन**
बेहड़ा भवन 87/1कुंदनपुरा मुजफ्फरनगर फो नं. : (0131) 450229

(4) **श्रीमती लक्ष्मीगुरुचरण जी जैन**
144 मुवी टावर नीयर, मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्पलेक्स,
अंधेरी (प.) मुंबई–400053
फोन नं. : (022) 6327152, 6312124, 6327152

(5) **'सेवाश्री' सुरेखा जैन (शिक्षिका)** w/o वीरेन्द्रकुमार डालचन्दजी गड़िया
कपड़े के व्यापारी – सलुम्बर जि. उदयपुर पिन. 313001
फोन नं. : (02906) 32043

(6) **श्री महावीर कुमार जैन**
13 अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी कोटा फोन नं. : (0744) 410818

(7) **धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान**
C/o चन्द्रप्रभु मंदिर, आयड़, छोटूलाल चित्तोड़ा
आयड़ बस स्टोप के पास, उदयपुर–313001(राज.)
फोन न. 413565

लेसर टाईप सेटर्स
श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर 25, शिरोमणि बंगलोज,
सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद–380026
फोन – 5892744, 5891771

मुनिश्री गुप्तिनंदी ससंघ सान्निध्य में आचार्यश्री कनकनंदीजी के ग्रंथों के विमोचन का एक दृश्य

संगोष्ठी में उपस्थित महिला श्रोतागण

वैज्ञानिक धर्माचार्य प्रति

संगोष्ठी समापन सभायां समर्पिता भावप्रसूनाः

शान्त चित्तः धीर वृत्तिः धर्माचार्य विभूषितः।
पालकः साध्वाचारस्य वैराग्य वृत्तेश्च धारकः॥
दयालुः शान्त वृत्तिश्च क्षमावान् प्राणिनां प्रति।
सर्वोपकारकः धीमान् वैज्ञानिकः सुधी महान्॥
अहिंसको योऽनायासः प्रशान्तो यः प्रियवादी च।
जप शौच परो नित्यः प्रियवाक्य विचक्षणः॥
एतादृश गुणौर्युक्तो विभूतिः महानायकः।
रत्नत्रयेण भूषितः विज्ञानेन समायुतः॥
तं नमामि महामुनिं श्रद्धया कनकनन्दीम्।
वैज्ञानिकं धर्माश्चार्य विश्व धर्म प्रवर्तकम्॥
प्रेरिता योजिता तेन वैज्ञानिक संगोष्ठीयम्।
यत्र वयं समायाता बन्धु भावेन पूरिताः॥
सार्थका सफला गोष्ठी चत्वारः दिवसात्मकाः।
भाग्यं सफलमद्य उदयपुर वासिनः॥
आशीर्वादोप्राप्तो यैः कनकनन्दी सुमुनेः।
वयं प्रतिभागिनोऽपि सौभाग्येन समन्विताः॥
आतिथ्यं सुष्ठुः प्राप्ताः न किंचिदपि दुःखीताः।
गुरूवरस्याशीर्वादेन वयं सर्वेऽप्युपकृताः॥
नमाम्यहं गुरूवरं भाक्ति भावः समन्वितः।
समर्पयामि चाभारं सर्वान् नगर वाशीनः॥

आचार्य राजकुमार जैन
अनेकान्त साहित्य शोध संस्थान
सूरजगंज, दूसरा चौराहा
इटारसी–४६१११ (म.प्र.)

विश्व को सही दिशा सत् साहित्य एवं संत ही दे सकते हैं

– आर्यिका ऋद्धि श्री
(संघस्थ आ. कनकनन्दी)

वर्तमान परिवेश में भौतिक व्यवस्था हमारी जीवन शैली को सुखी बना रही है, पर किस कीमत पर बना रही है यह हम नहीं देख पा रहे हैं। हमारी बाल–युवा–पीढ़ी इस नयी जीवनशैली की कीमत किस तरह अदा कर रही है यह किसी को सोचने समझने की फुरसत नहीं है। मौज–मस्ती, खाने–पीने में ही सुख मानने वाली इस नयी पीढ़ी की संवेदनायें अग्रिम बिन्दु पर हैं या शून्य बिन्दु पर यह विचारणीय एवं गंभीर प्रश्न है।

आज चारों तरफ हिंसा, झूठ, कूट–कपट, अन्याय, आतंक, भ्रष्टाचार, पापाचार, अत्याचार, असहिष्णुता, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा का ही बोलबाला है। आखिर विश्वगुरु, आध्यात्मप्रधान भारत देश के भारतीयों में ये निकृष्ट विकृतियाँ क्यों और कैसे पनपती जा रही हैं? इन विकृतियों के पनपने में कोई एक–दो कारण ही नहीं है बल्कि कई–2 कारण उत्तरदायी हैं। जिसे हम मनोरंजन का साधन, समय पास का साधन मानते हैं ऐसे सिनेमा, टी.वी. उपन्यास, नोबिल्स, खेल आदि ने इन विकृतियों को परिपुष्ट करने में अपना मजबूत संबल प्रदान किया है। अधिकांश घरों में चाहे जब जाइये टी.वी. ऑन ही मिलेगी। टी.वी. पर चलते अश्लील प्रोग्रामों ने व्यक्ति की दिनचर्या एवं आचरण को प्रभावित किया है। पल–पल पर बदलते चैनलों ने बच्चों की मानसिक स्थिति को अस्थिर बना दिया है। समाचार पत्र–पत्रिकाओं में आये दिन स्कूली बच्चों के हिंसक, डाकू होने के समाचार पढ़ने को मिलते हैं। अमेरिका जैसे विकसित देशों में इस तरह के आंकड़े दिन–प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। वहाँ के स्कूली बच्चों के पास हथियार, अस्त्र–शस्त्र पाये जाते हैं। टी.वी. पर ऐसे प्रोग्राम देखते–2 बच्चा इतना निडर, बेखोफ हो जाता है कि वह हथियार लेने एवं चलाने में डरता या हिचकिचाता नहीं है। अश्लीलता, नग्नता के प्रोग्राम देख देखकर माँ, बेटी, बहिन, भाई आदि के स्नेहपूर्ण रिश्ते भी दिखाई नहीं देते। जहाँ बच्चों का एक बचपन होता था, प्रकृति की गोद होती थी, माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी, भाई–बहिन जैसे संबंधों की स्नेह भरी अनुभूति

मिलती थी पर ये सब आज कहाँ विलुप्त हो गया? इस बात की न तो माँ–बाप को ही जानकारी है और न बच्चों को। बच्चों की सूखती संवेदनायें और हिंसक मनोवृत्तियों पर चिंता आखिर किसे हो सकती है? यह विचारणीय प्रश्न है। यह चिंता आज के परिवेश में विरले लोगों को ही है परन्तु अधिकांशतः तो इसी वातावरण में रचपच, रम रहे हैं।

एसे आतंक, अनैतिक, भ्रष्ट, पतित परिवेश को सही दिशा सत् साहित्य व संत ही दे सकते हैं। आज विश्व में संत भी बहुत है लेकिन उनमें वास्तविक संतपना नहीं है। उनकी भी कथनी–करनी में अंतर है। इसीप्रकार सत् साहित्य के भी विश्व में भण्डार भरे हुए हैं लेकिन उस सत् साहित्य को कितने लोग पढ़ते हैं और उस रूप आंचरण में क्रियान्वित करते हैं? प्रश्न इस बात का है। जो मन में आया पढ़ लिया और पढ़कर फिर वापिस वहीं विराजमान कर दिया, अपनी जीवन शैली में कुछ भी घटित नहीं किया तो पढ़ने की क्या उपयोगिता सिद्ध हुई? वर्तमान में प्रायः इसी प्रकार का हो रहा है।

समता, सत्य, अनेकान्त में अपने जीवन को ढालकर जो समस्त प्राणियों के प्रति आदर्श और व्यापक दृष्टिकोण रखता है वही संत है। संत का स्वरूप ईश्वरसम होता है। इसी प्रकार जिसके पढ़ने से मानवीय चेतना ज्ञान के प्रकाश से दीप्तिमान होकर जगमगा उठती है वह सत् साहित्य होता है और ऐसे साहित्य का अध्ययन करने वाला साधक कहलाता है। सत् साहित्य को पढ़ने वाला एवं तद् रूप आचरण करना यानि संत, साधक होना ये दोनों ही गुण विरले लोगों में ही पाये जाते हैं।

मैंने अपने अभी तक के अनुभवों से ये दोनों ही गुण पूज्य कनकनंदी जी गुरुदेव में देखे। संत का लक्षण एवं सत् साहित्य का गहन अध्ययन ये दोनों ही लक्षण पूज्य गुरुदेव में बाल्यावस्था से ही मौजूद थे, विरासत में मिले थे। पूज्य गुरुदेव को बाल्यावस्था से लेकर अभी तक का जीवन सत् साहित्य को पढ़ने एवं लिखने में ही व्यतीत हुआ है। लिख भी वही सकता है जिसने कुछ पढ़ा हो और लिखा हुआ भी उसी का प्रामाणिक माना जाता है जो अंतरंग और बहिरंग से संत के लक्षण से युक्त हो। जिसकी चर्या व चर्चा समान। पूज्य गुरुदेवका संकल्प, प्रयास, लक्ष्य, उद्देश्य यही है कि मेरी कार्यप्रणाली द्वारा, मेरी लेखनी द्वारा विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख शांति, प्रेम, सौहार्द, एकता, संगठन का वातावरण विर्निमित

करे। कार्यप्रणाली का मूर्तरूप तो चंद लोग ही देख सकते हैं और उससे लाभान्वित हो सकते हैं लेकिन लेखनी का लाभ प्रत्येक प्राणी उठा सकता है। इसीलिए गुरुदेव अपनी लेखनी को सतत् प्रवाहमान रखते हैं उसे विराम नहीं देते हैं।

पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित सत्साहित्य जीवनी बूटी की तरह है जो अमृतत्व प्रदान करता है, मन की भटकन दूर करता है, निराशाओं में आशा की किरणें दिखाता है, उबाऊ जिंदगी में सच्चे मित्र की भूमिका निभाता है, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' की शिक्षा देता है, सफल आदर्श जीवन कैसे जिया जाये इसकी शिक्षा देता है, 'सत्यं शिवं सुदरं' का मर्म सन्निहित है, 'नीर क्षीर विवेक' के उदाहरणों से समाहित है। ऐसे साहित्य का अध्ययन करने पर जीवन का मूल्यांकन एवं समीक्षा करने की कला विकसित होती है। ये सभी गुण तभी समाविष्ट हो सकते हैं जब सत्य, न्याय, समता, अनेकांत, स्याद्वाद लेखनी में ही नहीं अपितु जीवन में क्रियान्वित हो। क्योंकि सत्य, न्याय, समता के बिना न तो कोई नियम बनते हैं, न अनुशासन के सिद्धान्त, न स्व–पर का सुधार–कल्याण। स्व का सुधार होने पर ही पर का सुधार संभव है। इसीलिए ऐसे प्रामाणिक, परिमार्जित, प्रखर, श्रेष्ठ साहित्य की रचना तो किसी अवतारी साहित्यकार से ही संभव है। जिस साहित्य में प्रामाणिकता सत्यता, न्यायशीलता, समरसता, अनेकांत, स्याद्वाद, आत्मसम्मान की गरिमा महिमा नहीं वह साहित्य शिव नहीं शव है, सुंदर नहीं असुंदर है, शास्त्र नहीं शस्त्र है, सत्य नहीं असत्य है, सत् नहीं असत् है।

अभीक्ष्ण ज्ञान की संपदा से सिक्त पूज्य गुरुदेव ने अपना समय, श्रम, बुद्धि अनेकान्तिक दस्तावेजों को तैयार करने में ही लगायी है। उदात्त चिंतन की ऊर्ध्वमुखी ओजस्वी धारा प्रवाहमान कर, तत्वज्ञान को नूतन व्याख्याओं से समृद्ध किया है। शोध–बोध आविष्कार समीक्षाओ द्वारा नये–2 विषयों को परिभाषित किया है। ऐसे संत के सत् साहित्य को ज्ञानपिपासुओं ने, शीर्षस्थ बुद्धि जीवियों ने समझा और सराहा है।

गुरुदेव के जीवन का प्रतिपल जन चेतना के सर्जनात्मक परिष्कार एवं उनके मानसिक विकास को परिपुष्ट / समृद्ध / सशक्त करने में लगा हुआ है। निस्संदेह ये कदम आने वाली पीढ़ी के लिए एक आलोकित प्रकाश स्तम्भ बनेंगे। भौतिकवादी परिवेश को सम्यक् एवं श्रेष्ठ दिशा–दशा ऐसे ही वैज्ञानिक संत व उनकी ऋतम्भरा–प्रज्ञा द्वारा रचित सत् साहित्य ही दे सकता है।

हृदयोदगार

रे नर पिशाच! निर्दोष पशु-पक्षियों की हत्या का मानवाधिकार कहाँ से प्राप्त किया?!

(संकीर्ण – क्रूरतापूर्ण मानवाधिकार)

''बिन जाने ते दोष गुणन को कैसे तजिए गहिए।''

अर्थात् जब तक दोष एवं गुणों का परिज्ञान नहीं होगा तब तक दोषों का त्याग तथा गुण –ग्रहण नहीं हो सकता है। इस दृष्टि से मानव समाज की समीक्षा / परीक्षा आवश्यक है। कुछ महामानवों की महानता के कारण मानव समाज को सब महान् मानते हैं जो कि असत्य–अतथ्यपूर्ण होने के साथ–साथ अनेक अनर्थों के जनक हैं। प्राकृतिक रूप से मनुष्य की शारीरिक–संरचना, बौद्धिक क्षमता आदि कुछ विशेषताओं के कारण मनुष्य भले कुछ अन्य जीवों से कुछ भिन्न हो परन्तु उसकी दुष्टता, क्रूरता, स्वार्थनिष्ठा आदि दुर्गुण उसे श्रेष्ठ के बदले निकृष्ट, ज्येष्ठ के परिवर्तन में कनिष्ठ, महान् के बदले तुच्छ ही सिद्ध करते हैं। अन्य पशु–पक्षी तो पेट पोषण, आत्मसंरक्षण आदि अपरिहार्य कारणों से कुछ पाप करते हैं, परन्तु मनुष्य पेट से अधिक पेटी (संग्रह), आत्म संरक्षण से अधिक पर–भक्षण के लिए, आवश्यकता के अधिक अनावश्यक दुष्टतापूर्ण कार्य के लिए, परिशोधन से अधिक प्रतिशोध के लिए, बदलने (परिवर्तन, परिमार्जन, सुधार) से अधिक बदला लेने (विध्वंश–विनाश) के लिए भयंकर, अधिक पाप करता है; इसीलिए ऐसे मानव को महान् मानना, बोलना, लिखना मानो उसके महान् पाप को पुण्य रूप से स्वीकार करना, पाप को ढकना, उसकी दुष्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करके उसे और भी अधिक पाप करने की प्रेरणा देना, कारण बनना है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदन से पाप होता है। इसीलिए जो पाप करता है वह तो पापी है ही परन्तु जो उसका समर्थन, सहयोग भी मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से करता है वह भी पापी है।

विश्व में अन्य कोई भी जीव भले वह दुष्ट से दुष्ट, पशु, पक्षी, नारकी, देवता ही क्यों न हो वह मनुष्य के बराबर पापी नहीं है। मनुष्य अत्यन्त स्व–संकीर्ण स्वार्थ की दृष्टि से ही समस्त व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय,

अन्तर्राष्ट्रीय तथा वैश्विक विषयों की तुलना करता है। मनुष्य का क्या अधिकार है कि प्रकृति में जो अन्य वनस्पति पशु , पक्षी आदि जीव हैं उसे अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए जीवित या मार करके भी प्रयोग करें ? क्या अन्य किसी पशु, पक्षीने मनुष्य के लिए ऐसा व्यवहार किया है ? कर रहा है ? यदि कोई ऐसा करेगा तो मनुष्य क्या उसको सहर्ष स्वीकार किया है ? या करेगा ? जो गाय भैंसादि पशु दूध, मूत्र, गोबर, श्रम, संतानादि के द्वारा मनुष्य की सेवा करते हैं उन्हें भी यह बर्बर, कृतघ्न, भ्रष्ट बुद्धिवाला मनुष्य मारकर खा जाता है। ऐसा व्यवहार क्या कोई पशु, पक्षी करता है ? इतनी मात्रा में योजनाबद्ध उपायों से मनुष्य को मारकर खाता है ? कोई पशु, पक्षी यदि जीवन यापन के लिए या आत्मरक्षा के लिए भी एक भी मनुष्य को घायल कर देता है तो मनुष्य उसकी तथा उसके अन्य सदस्यों की भी निर्मम हत्या कर देता है। मनुष्य को जितना सुखपूर्वक जीने का अधिकार है वैसे क्या इतर जीवों को नहीं है ? उसने ऐसा जीने का अधिकार कहाँ से प्राप्त किया है ? साथ ही दूसरें जीवों के जीने के अधिकार को छीनने का अधिकार कहाँ से प्राप्त किया ? कोई सरकार,नेता, राजा, पंथ, संप्रदाय, धार्मिक–ग्रंथ, न्याय, कानून, न्यायालय को भी अन्य जीवों को मारने का, सताने का अधिकार, लाइसेन्स देने का अधिकार कहाँ से प्राप्त किया है ? यह अधिकार प्रकृति नहीं दे सकती है; क्योंकि प्रकृति के लिए हर जीव स्व अभिन्न अंगभूत / स्वसंतान है। जिसप्रकार शरीर के हर अंग–उपांग स्वस्थ रहने से शरीर स्वस्थ रहता है उसी प्रकार प्रकृति के हर जड़–चेतनात्मक घटक स्वस्थ रहन से प्रकृति स्वस्थ रहती है। प्राणी हत्या से लेकर के प्रकृति के दोहन, शोषण का अतिवृष्टि, अनावृष्टि भूकम्प, बाढ़, चक्रवाती तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोपों द्वारा प्रकृति विरोध करती है। इसीप्रकार भगवान् भी ऐसे अधिकार नहीं दे सकते हैं क्योंकि भगवान् दयालु, समदर्शी, सर्वज्ञ, भेदभाव से रहित होते हैं। मनुष्य स्व स्वार्थ के लिए, स्व–सुरक्षा के लिए हर प्रकार की व्यवस्था करता है और कानून, नीति–नियम भी बना लेता है। मानव अधिकार में तो स्व अधिकार के लिए सब कुछ करता है। लेकिन पशु–पक्षी आदि के अधिकारों को छीनता है। जो कानून, सरकार (प्रशासन) आदि अन्य पशु पक्षियों को मारने का अधिकार देते हैं क्या वे ऐसे कानून बना करके स्वयं को मारने की योजना बनाते हैं ? मनुष्यने अपनी संकीर्ण स्वार्थपरता एवं कुबुद्धि के कारण संविधान, कानून से निश्चित किया है कि पशु, पक्षियों को वैध रूप से बूचड़खाने में मार

सकते हैं। इस कानून के कारण निर्दोष परोपकारी, स्वस्थ, सबल कम वयस्क से लेकर वृद्ध, रुग्ण पशु–पक्षियों की जिनकी सेवा सुरक्षा की आवश्यकता है, उनकी भी निर्मम हत्या बूचड़खाने में की जाती है। क्या ऐसे कोई कानून मनुष्य के लिए बनाए हैं जिससे रुग्ण, वृद्ध, काम करने के अयोग्य मनुष्यों की हत्या सामूहिक रूप से बूचड़खाने में की जावें ? यद्दि नहीं तो क्यों नहीं ? यदि मनुष्य के लिए यह अनैतिक, अविधेय है तो यह पशु–पक्षियों के लिए अनैतिक अविधेय क्यों नहीं है ? यह क्या मनुष्य की महानता सिद्ध करता है ? या मनुष्य की संकीर्णता, क्रूरता, बर्बरता को सिद्ध करता है ? इसीप्रकार जो व्यक्ति, जो जाति, जो धर्म, जो राष्ट्र, जो संगठन शक्तिशाली होता है वह भी अपनी संकीर्णता के कारण दूसरें व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक के लिए ऐसी ही संकीर्णता एवं बर्बरता–पूर्ण नीति, गति विधियाँ अपनाते हैं। कहा भी है **''लोकः प्रायः स्वार्थ परायणम्''** अर्थात् समस्त संसार स्वार्थ परायण है। मानव सब कमजोरियों को, संकीर्णताओं एवं क्रूरताओं को त्याग करके भलाईयों को, उदारताओं को, महानताओं को अपनाये जिससे स्व कल्याण के साथ–2 पर कल्याण एवं विश्व कल्याण संभव हो सके। व्यक्ति से लेकर समाज, विश्व में शान्ति, सुख, समृद्धि का साम्राज्य केवल नैतिक, आध्यात्मिक गुणों की स्थापना से ही संभव है। यही मानव की मानवता एवं महानता है, समाज की व्यवस्था है, राष्ट्र की नीति है, कानून का प्राण है, विज्ञान की सच्चाई है, धर्म का हृदय है। इसके बिना न तो मानव की मानवता / महानता, समाज की व्यवस्था, राष्ट्र की नीति, संविधान, धर्म का प्राण एवं विश्व शांति की व्यवस्था है। इसके बिना समाज–राष्ट्र, कानून, संविधान, विज्ञान, धर्म आदि सब हितकारी के बदले अहितकारी, विकास के बदले विध्वंसकारी सिद्ध होंगे। अतः कहा भी है–

कु बोधरागादिविचेष्टितैः फलं
त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम्।
प्रतीहि भव्य प्रतिलोम वृत्तिभिः।
ध्रुवं फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणम्॥

(106)आत्मानुशासन

हे भव्य ! तुने बार–2 मिथ्या ज्ञान, राग–द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जन्म मरणादि फल प्राप्त किया है। इसके विरुद्ध प्रवृत्तियों सम्यक्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों– के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर–अमर पद को प्राप्त

करेगा ऐसा निश्चय कर।

दया दमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुण प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसो॥

(107) आत्मानुशासन पृ. 101

हे भव्य ! तू प्रयत्न करके सरल भाव से इंद्रिय दमन, दान और ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त कराता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

मैंने इस कृति में समस्त मानव को लक्ष्य करके लिखा है इसमें किसी जाति, पंथ, धर्म, राष्ट्र के पक्ष–विपक्ष में नहीं लिखा है। मेरी पवित्र भावना है कि मानव स्व की महानता, क्षमता, शक्ति, उपलब्धियों को समझे एवं स्व–पर–विश्व कल्याण में लगाये। क्योंकि शक्ति के सदुपयोग से विकास है एवं दुरुपयोग से विनाश है। बड़ी से बड़ी शक्ति के सदुपयोग से विकास होता है एवं दुरुपयोग से बड़े से बड़ा विनाश होता है। यह एक विडम्बना है कि व्यक्ति उपलब्धियों का सदुपयोग कम करता है एवं दुरुपयोग अधिक करता है। उपलब्धि के बिना जो हानि होती है उपलब्धि का दुरुपयोग करने से उससे भी बड़ी हानि होती है। इस वैज्ञानिक युग में बौद्धिक एवं भौतिक विकास के साथ साथ भावात्मक–आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता है। इसके बिना विज्ञान के अधिक विकास से अधिक से अधिक विनाश होने की संभावना है। क्योंकि एक व्यक्ति लाठी के माध्यम से जितना दूसरों को कष्ट दे सकता है, विध्वंश कर सकता है, मार सकता है एटमबम से उससे लाखों–करोड़ों गुना विध्वंश करना संभव है। खेद है! मानव वैज्ञानिक शोध–बोध, उपकरणों के माध्यम से कण से लेकर ब्रह्माण्ड तक, पृथ्वी से लेकर दूरस्थ आकाश गंगाओं का शोध–बोध कर रहा है तथापि स्वनिहित दुष्प्रवृत्तियों का शोध–बोध, परिमार्जन नहीं करता है।

जब व्यक्ति बाह्य विश्व के साथ–साथ अंतरंग विश्व का शोध–बोध, परिमार्जन करेगा तभी सच्चे स्थायी सुख को प्राप्त कर सकता है।

जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देख करके मुँह पर लगे काले कलंक को मिटाता है उसी प्रकार मेरी कृति को पढ़कर अपनी दुष्प्रवृत्तियों को दूर करें एवं पवित्र, महान् बने ऐसी शुभ महती भावना के साथ।

आ. कनकनंदी

गींगला (उदयपुर) २०/९/२००१

अनुक्रमणिका

नं.	विषय	पृ.सं.
1.	*निकृष्टतम स्वार्थी तथा क्रूरतम प्राणी : मनुष्य*	1
2.	*आदर्श अनुकरण या अंधानुकरण*	5
3.	*साक्षरों मत बनो राक्षस !*	11
4.	*प्रगतिशीलता या प्रतिगामी*	14
5.	*क्या मनुष्य ही सर्वथा महान् है?*	17
6.	*विविध*	22
	A. *भगवान् महावीर की महानता और व्यक्ति की क्षुद्रता*	22
	B. *भगवान महावीर की 2600वीं जन्म जयन्ती मनाने का अधिकारी कौन?*	24
	C. *वैश्विक सत्य समता – सुख शांति के लिए* **(www.jainkanknadhi.org.)**	26
	D. *महाकुंभ में भारतवासियों को संदेश*	30
	E. *शिक्षा में परिवर्तन के लिए सुझाव*	32

- यह भी एक विचित्र दुःखदायी विडम्बना है कि साक्षरता, नगरीकरण, सम्पत्ति, सत्ता, बुद्धि, कीर्ति आदि की वृद्धि से नम्रता, सहजता, दया, परोपकारिता, पवित्रता, स्वच्छता आदि गुणों में वृद्धि के परिवर्तन में विकृति या ह्रास होता है।

- आधुनिक विज्ञान की प्रगति के मूलकारण हैं सत्य-निष्ठा व्यापकता, गुणग्राहिकता, कर्तव्यनिष्ठा, लगनशीलता। विकास के इच्छुक को आधुनिक विज्ञान से इन गुणों की शिक्षा लेनी चाहिए।

- जो मृत्यु, प्रताडना, हानी आदि से भयभीत हुए बिना तथा लाभ, प्रशंसा, सुख-सुविधा की लालसा बिना सत्य, न्याय को अपनाता है वह ही सच्चा धार्मिक, नीतिवान, धैर्यवात् महान् है।

- आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

1 निकृष्टतम स्वार्थी तथा क्रूरतम प्राणी : मनुष्य

धर्म, प्राणी–विज्ञान, मनोविज्ञान आदि के अनुसार विश्व का सर्वश्रेष्ठतम प्राणी मनुष्य है क्योंकि मनुष्य मननशील, प्रज्ञाशील, उन्नतिशील, उदार, उदात्त, उत्कृष्ट, आत्मविश्वास, सत् विज्ञान, सदाचार, साधना, पुरुषार्थ के माध्यम से वह विश्व के श्रेष्ठतम कार्य, ज्ञान–विज्ञान, सभ्यता–संस्कृति, गणित, कला, शिल्प, संगीत, अमृत/मोक्ष का शोध–बोध–खोज, आविष्कार, प्रवक्ता तथा उपलब्धकर्ता है। इसे ही प्रकारान्तर से कहें तो मनुष्य ही विश्व सभ्यता–संस्कृति आदि का कर्ता–धर्ता–भोक्ता है। ऐसे ही महामानवों को तीर्थंकर, अरिहन्त, गणधर, धर्मप्रवर्तक, धर्मप्रचारक, समाज सुधारक, ऋषि, मुनि, गुरु, आचार्य, पथप्रदर्शक, साहित्यकार, उद्धारक, वैज्ञानिक आदि रूपों में सम्मानित किया जाता है। ऐसे महामानव तथा उनके सच्चे उत्कृष्ट कुछ अनुयायियों को छोड़कर अधिकांश मानव अपने निकृष्ट स्वार्थ, क्रूरतम परिणाम के कारण विश्व में अन्य समस्त प्राणियों से अधिक हिंसा, युद्ध, फूट, लूट, आक्रमण, अन्याय, अत्याचार, बलात्कार, असत्य, संग्रह, शोषण, चोरी, डकैती, घोटाला, मिलावट, घूस, भ्रष्टाचार, प्रदूषण, गंदगी, विध्वंसादि कार्य करते हैं। इसीलिए तो सुकार्य करने वाले स्वर्ग से मोक्ष तक को प्राप्त करते हैं परन्तु कुकार्य करने वाले तिर्यन्च (पशु–पक्षी, कीट–पतंगादि) से लेकर सप्तम नरक तथा निगोद तक को प्राप्त करते हैं। अन्य कोई भी जीव, पशु, पक्षी, नारकी, देव तक उपर्युक्त समस्त उत्कृष्टतम तथा निकृष्टतम अवस्थाओं को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। स्वर्ग के देव भी सुकार्य करते हुए भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते हैं तो क्रूर माँस भक्षी सिंह तथा सप्तम नरक के नारकी भी कुकर्म करके मरकर सप्तम नरक में नहीं जा सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य अपनी शक्ति, बुद्धि, उपलब्धि का सदुपयोग करके विश्व में श्रेष्ठतम कार्य करके श्रेष्ठतम बन जाता है और उसका दुरुपयोग करके विश्व में निकृष्टतम बन जाता है।

(1) निकृष्टतम स्वार्थी मनुष्य

मानव –स्व, धन, मान, सम्मान, काम, भोग, उपभोग, वैभव, संप्रदाय, मत, ग्राम, नगर, राज्य, राष्ट्र, संगठन, यश, कीर्ति, प्रसिद्धि आदि के लिए इतना अत्यन्त संकीर्ण, स्वार्थान्ध होता है कि वह उसके कारण दूसरें जीवों के सुख, शांति, वैभव,

नाम, कीर्ति, स्वतन्त्रता तथा जीने के अधिकार तक को न स्वीकारता है, न सुहाता है। स्व–स्वार्थ–पूर्ति के लिए दूसरों के धन, जन, मान–सम्मान तथा जीवन तक का अनैतिक, अवैधानिक, अधार्मिक, रुप से प्रयोग करता है। एक शक्ति एवं साधन सम्पन्न व्यक्ति अन्य मनुष्य से लेकर पशु–पक्षी, प्रकृति, वनस्पति तक का क्रूर, शोषणात्मक प्रयोग जीवित अवस्था से लेकर मृत्यु तक करता है। उसके बर्बर, स्वार्थ, क्रूरतम अभिनय यहाँ तक होते हैं कि जिस जीव से जीवन भर उपकृत रहा, सहायता प्राप्त की उसकी भी निर्मम हत्या करके उसका माँस खाता है, चर्म पहनता है, उसके खून, चर्बी, हड्डी आदि से स्वशरीर को शृंगारित करता है, घर को सजाता है। वनस्पति से लेकर पशु–पक्षी तक दूसरों के उपकार के लिए फल, अनाज, लकड़ी, छाया, शीतलता, प्राणवायु, फूल, सुगन्धी, मेवा, रुई, दूध, गोबर, मूत्र, श्रम, सुरक्षा साधनादि देते हैं जिसमें मनुष्य से लेकर क्षुद्र प्राणी तक जीवित रहते हैं परन्तु मनुष्य एक ऐसा निकृष्टतम स्वार्थी प्राणी है जो ऐसे उपकारी जीवों को जीवित अवस्था में भी कष्ट देकर उनका उपभोग, शोषण करता है। और आवश्यकतानुसार उसकी निर्मम हत्या करके अपनी स्व–स्वार्थ–पूर्ति करता है। वह हर समय में, हर अवस्था में स्वयं के स्वार्थ के मापदण्ड से दूसरों की उपयोगिता, अनुपयोगिता, ज्येष्ठता, श्रेष्ठता, कनिष्ठता तथा जीवन एवं मरण का माप करता रहता है। इसका एक उदारहण यह है कि जिस पशु से यथा गाय, भैंस आदि से दूध, घी, श्रम आदि प्राप्त करता है, जब वे पशु बूढे हो जाते हैं, अकर्मण्य असहाय हो जाते हैं तब वह क्रूर, कृतघ्न, मनुष्य उनके उपकार भूलने के कारण उनकी योजनाबद्ध हत्या करके उनके शरीर के अवयवों का प्रयोग स्वार्थ के लिए करता है। क्या दुनिया में ऐसे क्रूरतम उदाहरण, इतनी अधिक संख्यामें इतनी अधिक मात्रा में अन्य प्राणियों में है? कोई अन्य प्राणी मनुष्य के जितने कृतघ्न, स्वार्थी है क्या?!

(2) क्रूरतम प्राणी मनुष्य

उपरोक्त निकृष्टतम स्वार्थ के कारण ही मनुष्य विश्व में अधिकतम क्रूरतम से क्रूरतम है। वह स्वार्थ से अंध, मोहित एवं आवेशित होकर सज्जन से सज्जन, श्रेष्ठतम से श्रेष्ठतम, परोपकारी से परोपकारी स्वजन से भी (भाई–बंधु, माता–पिता) यहाँ तक कि गुरु का भी कृतघ्न बन जाता है, उनका शोषण, विरोध करता है यहाँ तक कि उनकी हत्या भी कर लेता है। गृहयुद्ध से लेकर के जितने भी बड़े–

2 राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध यथा– महाभारत, रामायण, स्पार्टा, एथेन्स युद्ध, प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। क्रूर, अज्ञानी, अशिक्षित, माँस भक्षी, शेर, चीता, विषाक्त सर्प आदि भी मनुष्य के जितने क्रूर नहीं हैं क्योंकि उनसे मनुष्य के द्वारा किये गये क्रूर युद्ध, हत्या आदि के समान घटनायें नहीं होती है। शेर, चीता आदि माँस भक्षी पशु भी जब पेट भर जाता है तब उनके पास खेलने वाले हिरण, खरगोश आदि को भी कष्ट नहीं देते, मारते नहीं है। सर्प भी पूर्व वैरत्व या भय के बिना दूसरों को काटता नहीं है। परन्तु मनुष्य स्वार्थ तथा क्रूरता के कारण पशुता, दानवता तथा नारकी की नारकीयता से भी नीचे उतर जाता है। इसीलिए ऐसे नीच मनुष्य को पशु, नारकी, दानव या राक्षस कहकर संबोधित करना वस्तुतः पशुआदि का अपमान है।जैनधर्मानमुसार कुछ पशु पंचम गुणस्थानवर्ती के श्रावक बन जाते हैं जो कि कच्चा सचित्त पानी, वनस्पति आदि को भी नहीं खाते हैं। कुछ सम्यक्दृष्टि नारकी भी पूर्व पापकर्म के कारण परस्पर को कष्ट देते हुए भी मनुष्य जितना क्रूरतम कार्य करता है उतना वे भी नहीं करते हैं। इसीलिए केवल मनुष्य जन्म प्राप्त करके गर्व नहीं करना चाहिए परन्तु जो महान् कार्य करते हैं वे मनुष्य केवल धरती के लिए ही नहीं संपूर्ण विश्व के लिए पूज्जनीय, महनीय एवं आत्मगौरव के लिए कारण भूत हैं।

कुछ संकीर्ण धर्मान्ध व्यक्ति अपना धर्म (पंथ–परंपरा, रीति–रिवाज, पूजा–पाठ, आराधना–पद्धति आदि) को ही श्रेष्ठ मानकर दूसरें धर्म तथा धर्मानुयायियों से अत्यन्त घृणा, द्वेष–भाव रखते हैं, उन्हें नीच तुच्छ प्राणी मानते हैं तथा उन्हें दुनियाँ में रहने के योग्य नहीं मानते है, उन्हें कष्ट देते हैं, उनकी निर्मम–हत्या तक कर देते हैं। धर्म के नाम पर मानवीय इतिहास जितना रक्त रंजित है उतना और किसी भी राजनीति, सत्ता, सम्पत्ति के लिए नहीं है। इस कलंक की मात्रा उनमें अधिक से अधिक पाई जाती है जो स्वधर्म को सर्वश्रेष्ठ / ईश्वर का सच्चा धर्म तथा स्वयं को सर्वश्रेष्ठ धार्मिक बताते हैं, प्रदर्शन करते हैं तथा दूसरे धर्मानुयायियों को निकृष्ट / नास्तित / मिथ्यादृष्टि / काफिर मानते हैं। धार्मिक कट्टरतापूर्वक संकीर्णता से उपजी क्रूरता अत्यंत भयंकर / विध्वंसक होती है। ऐसी धार्मिक संकीर्णता तथा क्रूरता नीच से नीच तथा क्रूर से क्रूर पशु–पक्षी में भी नहीं पायी जाती है।

धन के स्वार्थ तथा तज्जन्य क्रुरता के कारण मनुष्य धोखाधड़ी, ठगी, शोषण,

चोरी, डकैती, मिलावट, भ्रष्टाचार, आक्रमण, युद्ध , लूट–पाट, हत्या, तक करता है। अधिक क्या कहा जावे धन के स्वार्थ से मनुष्य धर्म, नीति, सदाचार को तिलांजलि देकर माता–पिता, गुरु तथा राष्ट्र के साथ भी गद्दारी करता है। क्या ऐसा निकृष्ट कार्य कोई निकृष्ट पशु भी कभी करता है?

मान जनित क्रूरता के कारण मनुष्य दूसरों के मान, सम्मान, सत्ता, सम्पत्ति, कीर्ति, प्रसिद्धि से घृणा, करता है / क्षति पहुँचाता है। यहाँ तक कि गुरुजनों की अवमानना / अनादर / तिरस्कार करता है। सत्ता / सम्पत्ति / शक्तिसम्पन्न व्यक्ति तो केवल अपने मान के लिए दूसरों का मानभंग करता है। यदि दूसरा स्व–मान की रक्षा करना चाहता है तो उसकी सत्ता, सम्पत्ति सहित प्राणहरण तक कर लेता है। राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि इसके ज्वलन्त प्रायोगिक उदाहरण हैं। ऐसे जघन्य कार्यों को करने वाला मनुष्य नराधम, नर पिशाच, मनुष्याकृति पशु, नरासुर है। ऋषि वाल्मीकि ने भी नारद के मुख से मनुष्य का वर्णन करते हुए कहा है–

नित्यं श्रोयसि सम्मूढं महादिव्यैसनैवृतम्॥ पृ. 1504

जो (मनुष्य) अपने कल्याण–साधन में मूढ़ है, बड़ी–बड़ी विपत्तियों से घिरे हुए हैं।

पश्य तावन् महाबाहो राक्षसेश्वर मानवम्।
मूढ़ मे वं विचित्रायै, यस्यन् ज्ञायते गतिः॥ (12)

हे महाबाहो राक्षसराज ! देखो तो सही यह मनुष्य लोक ज्ञानशून्य होने के कारण मूढ़ होने पर भी किस तरह के क्षुद्र पुरुषार्थों में आसक्त है। इस विषय का भी पता नहीं कि कब सुख–दुःख भोगने का अवसर आयेगा।

क्वचिद वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितै जनैः।
अद्यते चापरैरातैधाराश्नतु नयाननैः॥(13)

यहाँ कहीं कुछ मनुष्य तो आनंदमय होकर नृत्य वादित्र आदि का सेवन करते है; उसके द्वारा मन बहलाते हैं तथा कहीं कितने ही लोग दुख से पीडित होकर आँसू बहाकर रोते हैं।

मातापितृ पुत्र स्नेह भार्याबन्धुः मनोरमैः।
मोहितोऽयं जनो ध्वस्त, क्लेशस्वनाबुद्ध्यते॥(14)

माता–पिता, पुत्र, पत्नी, भाई के स्नेह एवं बंधनों में नाना प्रकार के मनोरथ को बाँधने के कारण वह मनुष्य लोक मोहग्रस्त हो परमार्थ से भ्रष्ट हो रहा है। इसे अपने बंधनजनित क्लेश का अनुभव ही नहीं होता है।

2 आदर्श अनुकरण या अंधानुकरण

आदर्श अनुकरण

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तन्तदेवतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जो–जो आचरण करते हैं वैसा आचरण दूसरे भी अनुकरण करते हैं। श्रेष्ठ पुरुष जो प्रमाणसिद्ध करते हैं उसके अनुसार सामान्य लोग अनुकरण करते हैं। सामान्य लोगों की बुद्धि, योग्यता, क्षमता, दक्षता, साधना, उपलब्धि, अनुभूति सामान्य स्तर की होती है और श्रेष्ठ पुरुषों की विशेषता लिए, असाधारण स्तर की होती है। अतएव सामान्य व्यक्ति प्रगति करने के लिए असाधारण बनने के लिए, विशेषता प्राप्त करने के लिए महापुरुष जो–जो उत्तमोत्तम आचरण करते हैं उसका वे अनुकरण करते हैं। यथा– ऊपर की मंजिल को चढ़ने के लिए सीढ़ी का, स्व–मुख दर्शन के लिए स्वच्छ दर्पण का, बुझे हुए दीपक को प्रज्ज्वलित करने के लिए जलते हुए दीपक का, लोहा को चुम्बक बनाने के लिए चुम्बक का, विद्याध्ययन के लिए विद्यार्थी विद्वान् गुरु का अनुकरण / अनुसरण / अवलम्बन लेता है। इसका कारण है– सत्य, तथ्य, आदर्श, नीति–नियम, सदाचरण, दर्शन, धर्म आदि अत्यन्त व्यापक, सूक्ष्म, गूढ़ रहस्यपूर्ण है। कहा भी है–

उतिष्ठतं जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कतयो वदन्ति॥

उपनिषद श्लोक 14

हे मनुष्यों ! उठो, जागो, सावधान हो जाओ और श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर–उनके पास जाकर उस परमब्रह्म परमेश्वर को जान लो, क्योंकि त्रिकालज्ञ ज्ञानी जन उस तत्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सदृश दुर्गम(अत्यन्त कठिन) बतलाते हैं। वेद व्यासने कहा भी है–

धर्म अतिसूक्ष्म निहीतं गुहायं।
महाजन येन गता स पत्थाः।

अर्थात् धर्म अत्यन्त सूक्ष्म एवं गुप्त / गूढ़ / अंतरंग है। इसीलिए ऐसे धर्म को

जानने वाले विज्ञ, श्रेष्ठपुरुष उस धर्म को प्रायोगिक रूप में जो आचरण करते है वह दूसरों के लिए सुबोध होने के कारण उस महात्मा द्वारा जो आचरित धर्म है वह दूसरों के लिए भी अनुकरणीय / अनुसरणीय है। क्योंकि–

एष सर्वेषु भूतेषु गुढ़ोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या, सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥(12) उपनिषद

यह सबका आत्मरूप परमपुरुष; समस्त प्राणियों में रहता हुआ भी माया के परदे में छिपा रहने के कारण सबके प्रत्यक्ष नहीं होता। केवल सूक्ष्म तत्वों को समझने वाले पुरुषों द्वारा ही अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जाता है। यथा–

मोक्ष मार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्वानां, वंदे तद्गुण लब्धये॥(8) मोक्षशास्त्र

जो मोक्षमार्ग के नेता है, कर्मरुपी पर्वतों के भेदने वाले हैं, और विश्वतत्व के ज्ञाता है, उनकी मैं उनके समान गुणों की प्राप्ति के लिए सदा वंदना करता हूँ।

स्तुति /प्रार्थना /पूजा / गुणानुस्मरण / गुणानुकरण करने का आध्यात्मिक–मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि वह अनुकरणकर्ता धीरे–2 अनुकरणीय बन जाता है। यथा–

अज्ञानोपास्तिरज्ञान ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयाः।
ददातु यस्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः॥(23) इष्टोपदेश

अपने आत्मा से भिन्न अर्हन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे–दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानि साथ–साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन तद्रूपं ध्यायेतमात्मानमात्म वित्।
तेन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा॥

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है उस स्वरूप हो जाता है। जैसे– स्फटिकमणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से उस रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।
अर्हत्ध्यानविष्टो भवार्हन् स्यात्स्वयं तस्मात्॥

यह आत्मा जिसभाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूप हो जाता है। अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

उपर्युक्त कारणों से ही श्रेष्ठ पुरुष / आदर्श पुरुष / महात्मा–साधु–पुरुष संत धर्म संस्थापक / धर्मप्रचारक / गुरुओं का / बड़ों का गुणानुस्मरण / गुणानुकरण करते हैं जो कि विधेय हैं / योग्य है। जो सामान्य व्यक्ति ऐसा करते हैं वे सामान्य से असामान्य, क्षुद्र से महान् दानव से मानव, मानव से महामानव, महामानव से भगवान् बन जाते हैं। या Dog से God जीव से जिनेन्द्र, बुद्धु से बुद्ध, पतित से पावन, नर से नारायण, अंजन से निरंजन, जानवर से जिनवर बन जाते हैं।

अन्धानुकरण

'गतानुगतिकः लोकः न लोकः परमार्थिकः।'' अर्थात् सामान्य मनुष्य रुढ़िगत परम्पराओं का अनुकरण करने वाला है। परन्तु परमार्थिक / सत्य–तथ्य / आदर्श / महान् का नहीं। जैसा कि जो तैरने में असमर्थ / अनभिज्ञ या घास–फूस, तिनका आदि हैं वे अथाह पानी के स्त्रोत में तैर नहीं सकते हैं डुबकी नहीं लगा सकते हैं, डुबकी लगाकर गहराई के बहुमूल्य रत्नादि प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वे पानी में डूब जायेंगे या मर जायेगे या तैरना, डुबकी लगाना या रत्नादि प्राप्ति से वंचित रह जायेगे वैसे ही सामान्य व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषरुपी अथाह जीवन प्रवाह में न प्रवाहित / प्रभावित होते हैं न गहराई में अवगाहित / आप्लावित होते हैं, न ही गुणरत्नों को प्राप्त कर सकते हैं परन्तु वे उस जीवन प्रवाह में डूब जायेंगे या मर जायेंगे अर्थात् महापुरुषों के गुणों से वंचित रहेंगे या दुरुपयोग करेंगे या विरोधी / कृतघ्न / घातक बनेंगे। महावीर भगवान् के ऊपर उपसर्ग, सुकरात को विष पिलाना, ईशामसीह को काँटे के ताज पहिनाना तथा कीलों से उन्हें क्रोस में ठोकना, मीरा को विष पिलाना, साधुसंत, धर्म प्रचारकों, समाजसुधारकों को कष्ट देना, उनका विरोध करना, उनकी निर्मम हत्या करना आदि इसके ज्वलन्त प्रायोगिक उदाहरण है। कुछ जीवित महापुरुषों की जीवित अवस्था में तो उपेक्षा / प्रताड़ना / विरोध–विघ्न / विराधना / विनाश करेंगे परन्तु मृत्यु के बाद गुणगान करेंगे, मंदिर, मूर्ति, चित्र, चरित्र, नाटक, अभिनय करेंगे, पूजेंगे। अर्थात् **'जिन्दा बाप से लट्ठम लट्ठा मरे हुए की पहुँचावे गंगा।'**

इसीप्रकार कुछ लोग महापुरुषों के तो केवल बाह्य. में गुणगान / पूजा / प्रार्थना / आरती / आराधना करेंगे परन्तु उनके गुणानुकरण नहीं करेंगे परन्तु स्वयं को उनके सच्चे भक्त / अनुयायी / पट्टशिष्य / उत्तराधिकारी रूप में प्रदर्शित करेंगे / घोषित करेंगे तथा उनके माध्यम से सत्ता / सम्पत्ति / प्रसिद्धि प्राप्त करके स्वयं को तथा दूसरों को ठगेगें।

कुछ लोग अपनी शक्ति / क्षमता / भावना / भक्ति / अनुभूति / बुद्धि / परिस्थिति / उपलब्धि आदि का मूल्यांकन / तुलना किये बिना दूसरों का अंधानुकरण करते हैं। जैसा कि एक व्यक्ति घोड़ा एवं गधा के ऊपर कुछ माल लेकर जाते समय रास्ते में एक नदी पार कर रहा था। गधा ने देखा घोड़ा भार सहित नदी में डुबकी लगान से उसका भार कम हो गया है। अतः उसने भी अपना भार कम करने के लिए नदी में डुबकी लगायी जिससे उसका भार पहले से भी बहुत अधिक हो गया। गधा ने पूछा घोड़ा भैया! तुमने नदी में डुबकी लगायी तो तुम्हारा भार कम हो गया परन्तु तुम्हारी देखादेखी मैंने भी डुबकी लगायी तो मेरा भार पहले से भी बढ़ गया ऐसा क्यों हुआ? घोड़ा बोला– गधा भैय्या तुम कोरे गधा ही रह गये। मेरी पीठ पर नमक है जिससे मेरे डुबकी लगाने से नामक पिघल / धुल गया और मेरा भार कम हो गया, परन्तु तेरी पीठ पर रुई होने से डुबकी लगाने से तेरा भार और भी बढ़ गया। अतः कहा गया है–

''शक्तितस्त्यागतपसी'' अर्थात् शक्ति के अनुसार त्याग करना चाहिए एवं शक्ति के अनुसार तप करना चहिए। अतः स्वशक्ति, स्वप्रकृति के अनुसार तपादि करना विधेय एवं हितावह है। कहावत है– **''देखा देखी साधे योग छीजे काया बाढ़े रोग''** अर्थात् जो दूसरों का अंधानुकरण करके प्रसिद्धि आदि के लिए योग, तप साधता है तो उसे सिद्धि नहीं मिलती है; परन्तु शरीर दुर्बल हो जाता है, रोग बढ़ते हैं। आगम में कहा है– शक्ति से न कम तप करना चाहिये न अधिक। कम तप करना भी दोषकारक है क्योंकि इससे मायाचारी, प्रमाद, आलस्य, भोगासक्ति, विलासिता आदि दुर्गुण जन्म लेते हैं और बढ़ते हैं। उपर्युक्त सर्वदुर्गुण ही पतन के लिए कारण हैं। बाह्य तप उतना तपना चहिए जिससे संक्लेश भी न हो और अन्तरंग की तपस्या में वृद्धि हो क्योंकि बाह्य तप तपने का उद्देश्य अंतरंग तपस्या की वृद्धि के लिए। समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है।

बाह्य तपः परम दुश्चरमाचरंस्त्व
माध्यामित्मकस्य तपसः परिबृहणार्थम्॥

हे भगवन्! आपने परम दुश्चर (कठिनता) से आचरण योग्य बाह्य तप को अंतरंग तपस्या की वृद्धि के लिए तपा है। इसीलिए गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है–

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान्।
चित्त साध्यान् कषायारीन् न ज्जयेद्यन्तदज्ञता॥ (212)

(आत्मानुशासन पृ. 196)

यदि तूं कष्ट को न सहने के कारण घोर तप का आचरण नहीं कर सकता है तो न कर परन्तु जो कषायादिक मन में सिद्ध करने योग्य है– जीतने योग्य हैं उसे भी यदि नहीं जीतता है तो वह तेरी अज्ञानता है। तपश्चरण में भूख आदि के दुख को सहना पड़ता है, इसलिए यदि अनशन आदि तपों को नहीं किया जा सकता है तो न भी किया जाय। परन्तु जो राग, द्वेष एवं क्रोधादि आत्मा का अहित करने वाले हैं उनको तो भले प्रकार से जीता जा सकता है। कारण कि उनके जीतने में न तो तप के समान कुछ कष्ट सहना पड़ता है और न मन के अतिरिक्त किसी अन्य सामग्री की अपेक्षा भी करनी पड़ती है। इसलिए उक्त रागद्वेषादि को तो जीतना ही चाहिये। फिर यदि उनको भी प्राणी नहीं जीतना चाहता है तो यह उसकी अज्ञानता ही कहीं जावेगी।

नारायण कृष्णने गीता में कहा है कि जो योग्य आहार, विहार,विचार से युक्त होता हैं उसके सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं एवं वह सुख को प्राप्त करता है यथा–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा॥(17)

पृ. 74 गीता

जो मनुष्य आहार–विहार में, दूसरे कर्मों में सोने, जागने में परिमित रहता है उसका रोग, दुःख भंजन (नष्ट) हो जाता है।

नात्यश्नतस्तु योगेऽस्ति न चेकान्तमनस्पतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रता नैव चार्जुनः॥(16)

हे अर्जुन ! यह समत्वरूप योग न तो प्राप्त होता है ठूँस ठूँस कर खाने वाले को न उपवासी को, वैसे ही वह बहुत सोने वाले या जागने वाले को प्राप्त नहीं होता।

युक्त आहार–विहार–विचार– आदि से केवल हमारा परलोक ही सुखमय नहीं बनता परन्तु वर्तमान जीवन भी सुखमय बनता है। क्योंकि योग्य आहार–विहार से न मानसिक रोग होता है और न शारीरिक रोग होता है। इसके साथ–साथ उसको समाज में परिवार में आदर भी मिलता है। इसके विपरीत असम्यक् आहार–विहार करने वाला व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ रहता है, उसका जीवन भार स्वरूप हो जाता है वह न स्वाभिमान से जी सकता है और न हीं गौरवमय बन सकता है। आधुनिक चिकित्सा–मनोविज्ञान से सिद्ध किया गया है कि अयोग्य आचार–विचार से अनेक मानसिक रोग हो जाते हैं, जिसके

कारण अनेक शारीरिक रोग भी हो जाते हैं। मनोविज्ञान के अनुसार अनेक शारीरिक रोगों के मूल कारण मानसिक रोग ही है। यह आधुनिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त भारतीयों के लिए नवीन नहीं है। परन्तु यह सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन एवं अति परिचित है। आधुनिक चिकित्सा की विभिन्न शाखाएँ एवं उपशाखायें भारतीय जन जीवन में, धार्मिक शास्त्र में, धार्मिक क्रियाकाण्डों में एवं आयुर्वेद में यत्र–तत्र बिखरी पडी हुई है। नीचे एक आयुर्वेद–सूत्र उपरोक्त सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ–

नित्यं हिताहार विहार सेवी समीक्षाकारी विष्येष्वासक्ता।
दाता समः सत्य परः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥(86)

जो सतत हितकर आहार योग्य विहार करता है, विवेकपूर्वक परिणाम को विचार करके प्रत्येक कार्य करता है, पंचेन्द्रिय जनित विषय में आसक्त नहीं होता है, यथायोग्य पात्र में यथा योग्य दान देता है, लाभ–अलाभ, शत्रु–मित्र में समता भाव धारण करता है। सत्यग्राही, क्षमावान, देव शास्त्र गुरू, गुणीजन बुद्धजनों की सेवा करता है वह निरोगी होती है।

भारत की महान् संस्कृति सभ्यता, परंपरा के विपरीत भारतीय लोग भारत की संस्कृति, सभ्यता, परम्परा तथा जलवायु, भौगोलिक परिस्थिति के विपरीत गर्मी में भी A.C. में बैठकर गर्म–2 चाय, काफी पीयेंगे और ऊपर से कृत्रिम–विदेशी शीतल–पेय पीयेंगे, काला शूट–बूट, पैंट, टाई, कोट पहिनेंगे, वासी, निस्वाद, सत्वहीन, डिब्बाबंद, फास्टफूड खायेंगे, खड़े–खड़े मल–मूत्र त्याग करेंगे, माता को मम्मी (पुराना शव) और पिता को डैडी (मरा हुआ) बोलेंगे। यह सब बौद्धिक अपरिपक्वता, बचपना है। जैसा कि शक्तिमान् सीरियल देखकर शक्तिमान का अंधानुकरण करके अनेक बच्चे घायल हुए और मर भी गये। इसीप्रकार सिनेमा के नट–नटी, टी.वी. के विज्ञापन आदि का अंधानुकरण करते हैं। ऐसे ही नेलपालिश, लिपिस्टिक, शेम्पू, साबुन, क्रीम, पाउडर, टूथपेस्ट इत्यादि हिंसाकारक, अस्वास्थ्यकारक, अधिक व्यय के लिए कारणभूत वस्तुओं का सेवन करते हैं। मैं ऐसे हजारों व्यक्तियों को जानता हूँ जो ग्राम में भी रहते हैं जहाँ पर सुलभ रूप में नीम, बबूल आदि की दाँतून मिलती हैं वे भी स्वयं को धनी, आधुनिक शिक्षित बताने के लिए हिंसात्मक टूथपेस्ट आदि का प्रयोग करते हैं भले ही वे भोजन में शाकाहार का प्रयोग क्यों न करते हों।

3 साक्षरो ! मत बनो राक्षस !

''सा विद्या या विमुक्त्ये'' ''असतो मा सद्गमय''
''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' ''मृत्योर्मा अमृतगमय''

''विद्याया अमृतमश्नुते'' ''णाणं पयासणं'' ''नहि ज्ञानेन सदृश्यं पवित्रमिह विद्यते'' ''Knowledge is power'' आदि महान् सूत्र सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक जीव का परम लक्ष्य ज्ञान / विद्या / शिक्षा के माध्यम से मुक्ति, सत्य, प्रकाश, अमृत, पवित्रता, शक्ति, स्वावलम्बन, सदाचार आदि उत्तमोत्तम गुणों को प्राप्त करना है। विश्व में जितने भी महान् पुरुष हुए हैं, हो रहे हैं, और आगे होंगे वे इन महान् गुणों के कारण से ही हैं। परन्तु उपर्युक्त गुणों के बिना बुद्धि, विद्या, शक्ति, सत्ता, सम्पत्ति, प्रभुता प्रसिद्धि आदि सब स्व–पर विनाश के लिए कारणभूत होती है। उदाहरण रूप में रावण, कंस, हिटलर, नेपोलियन, तैमूरलंग आदि उल्लेखनीय हैं।

''साक्षरा विपरीताश्च राक्षसाः एव केवलम्।''

अर्थात् साक्षर व्यक्ति जब विपरीत आचरण करते हैं वे राक्षस ही हैं। जब किसी भी वस्तु, विषय, गुण, ज्ञान, शिक्षा का दुरुपयोग किया जाता है तब उससे विकास के परिवर्तन में विनाश ही होता है। शब्द को भी ब्रह्म कहा गया है, क्योंकि शब्द ब्रह्म'' से 'परंब्रह्म' का ज्ञान होता है। परन्तु जब केवल शाब्दिक परिचय / जानकारी को ही ज्ञान / ध्येय मान लिया जाता है तब ब्रह्म / जीव / आत्मा के बिना जिस प्रकार शरीर निर्जीव / निष्क्रिय होकर सड़कर दुर्गन्ध प्रदूषण, रोग फैलाता है उसी प्रकार ब्रह्म / सत्य / सदाचार के बिना साक्षरता आलस्य / दिखावा / फैशन / भ्रष्टाचार / हृदयहीनता / धूर्तता / कुटिलता / उच्छृंखलता / अविनय / स्वार्थपरता आदि दुर्गन्ध, प्रदूषण रोग आदि को जन्म दे रही है/फैला रही है।

बाल्यकाल से लेकर 10–20 वर्ष तक पुस्तकीय / सैद्धान्तिक शिक्षा के कारण किशोरवस्था तथा युवावस्था के प्रथम चरण तक प्रायोगिक–प्रशिक्षण, शारीरिक श्रम, सामाजिक व्यवहार, नैतिक व्यवहार, आध्यात्मिक–संस्कार आदि के अभाव या न्यूनता के कारण साक्षर व्यक्ति शारीरिकि शक्ति, नैतिक व्यवहार, संस्कारादि

से दुर्बल, अनभिज्ञ, दूर हो जाता है, जिससे वे प्रायोगिक जीवन में अयोग्य सिद्ध होते हैं। इसके साथ–2 साक्षर व्यक्ति साक्षरता / पुस्तकीय जानकारी को कुछ हद तक प्रायोगिक रूप से यथार्थ मान लेते हैं, उससे आत्म संतोष / अवचेतन संतुष्टि कर लेते हैं, घमण्डी हो जाते हैं। अधिकांश साक्षरों में मैंने जो दुर्गुण अनुभवात्मक में पाये हैं उसका कुछ संक्षिप्त दिग्दर्शन निम्नोक्त है।

(1) परावलम्बी / आलसी :– वे अपना स्व–दैनिक कार्य, योग्य पैतृक जीवनोपार्जन व्यवसाय यथा–कृषि, शिल्प, पशुपालन, वाणिज्य आदि, माता–पिता, गुरु, रोगी आदि की सेवा, सफाई, अतिथि सेवा, पैदल चलना, नैतिक –सांस्कृतिक कार्यक्रम करने में अयोग्य, असमर्थ होते हैं या करने में लज्जा आती है/अपमान अनुभव करते हैं। ये सब गंवार, गरीब, असभ्यों का काम मानते हैं। इससे वे शारीरिक–मानसिक रोगी हो जाते हैं। बेकार, निष्क्रिय, तनावपूर्ण, बोझीला जीवन जीते हैं। वे दूसरों का या सरकार के नौकर बनकर नीच से नीच कार्य करने के लिए विवश होते हैं।

(2) दिखावा / फैशन :– वे दूसरों से स्वयं को श्रेष्ठ / सभ्य/पृथक् सिद्ध करने के लिए और स्वयं की दुर्बलता / कमियों को ढाँकने के लिए दिखावा करते हैं/फैशन पोशाक का सहारा लेते हैं। प्राकृतिक, अहिंसात्मक, स्वास्थ्यप्रद दाँतून, तेल, शिकाकाई, हल्दी, प्रसाधन वस्तु, भोजन आदि को छोड़कर कृत्रिम, हिंसात्मक, अस्वास्थ्यकर ब्रुश, टूथपेस्ट, साबून, शैम्पू, सेंट, तेल, लिपिस्टिक, नेलपालिश, चर्म–चर्बी, हड्डी, माँस निर्मित वस्तुओं का प्रयोग करते हैं क्योंकि इन्हें न विज्ञान का न ही धर्म का अनुभवात्मक गहन ज्ञान होता है।

(3) हृदयहीनता, धूर्तता, भ्रष्टाचार :– साक्षर व्यक्ति परावलम्बी, आलसी, फैशन, दिखावा करने के कारण वे वास्तविक, **''सादाजीवन उच्च विचार'** (Simple living and high thing) सहजता–सरलता से रहित भी हो जाते हैं। जिसके कारण सामाजिक, आर्थिक, नैतिक आन्तरिक खोखलापन के कारण वे हृदयहीन, धूर्त होकर आर्थिक, सामाजिक, नैतिक आदि भ्रष्टाचार का अवलम्बन लेते हैं। वर्तमान में प्रायोगिक रूप में भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक,नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक, कानूनी भ्रष्टाचार में साक्षरों का ही बहुमत एवं वर्चस्व है।

(4) अविनय, उच्छृंखलता– कागजी साक्षरता के बड़प्पन के कारण वे अहं

ग्रन्थि से ग्रसित होकर दूसरों को तुच्छ, दीन–हीन मानते हैं, जिससे वे अविनयी, उच्छृंखल हो जाते हैं। उन में सत् साहस के परिवर्तन में दुःस्साहस, अनुशासनात्मक स्वतन्त्रता के परिवर्तन में उदण्डता / उच्छृंखलता आ जाती है। इन सब दुर्गुणों के कारण उनमें असामाजिकता / अअतिथि परायणता / संवेदनहीनता / संकीर्णता /स्वार्थ परता आदि आनुषंगिक दुर्गुण भी आ जाते हैं। इसीप्रकार धार्मिक साक्षर व्यक्तियों में उपर्युक्त दुर्गुणों के साथ–साथ धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता, संकीर्णता, भेदभाव, अनुदारता, घृणा आदि दुर्गुण पाये जाते हैं।

उपर्युक्त दुर्गुणों के लिए स्वयं साक्षर व्यक्तियों के साथ–2 सरकार, शिक्षा–नीति, समाज, दूषित वातावरण टी.वी. सिनेमा, साहित्य आदि भी कुछ हद तक उत्तरदायी हैं। मैंने विद्यार्थी अवस्था से लेकर आचार्य अवस्था तक जो भारत के 11 प्रदेश के छोटे ग्राम से लेकर महानगरी के अपना लाखों विद्यार्थी, शिष्य, निरक्षर से लेकर प्रध्यापक, प्राचार्य, वकील, जज, वैज्ञानिकों का जो प्रायोगिक अनुसंधानात्मक अध्ययन किया है उसके आधार पर यह लिखा है। मैंने यह भी पाया है जो एकदम निरक्षर हैं या कम साक्षर ज्ञान रखते हैं वे अच्छे हैं। अथवा जो गहन अनुभवात्मक विज्ञान, गणित, धर्म आदि का ज्ञान रखते हैं वे अच्छे हैं परन्तु जो थोथला पुस्तकीय, लौकिक या धार्मिक ज्ञान रखते हैं वे **''अतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट उभयतो भ्रष्ट''** होते हैं। जैसा कि कुछ कच्चे खाने योग्य फल को कच्चा खाने से गुणकारी है नहीं तो योग्य परिपक्व (सिझा) अवस्था में गुणकारी है परन्तु दुष्पक्वावस्था (अधकच्चा–अधपका–अधजला–अधगला) अवस्था में अहितकारी है। वैसा ही शिक्षा, विज्ञान से हैं। अथवा किया हुआ भोजन जब पाचन नहीं होता है तब जैसे ऊर्जा / आरोग्य के बदले में दुर्बलता / रोग का कारण है वैसा ही वाचन के बाद पाचन, तथा पढ़ने के बिना गुणने के बिना अहितकारी अधिक होता है।

आकाश के दृश्यमान विभिन्न रंग एवं आकार जैसा कि आकाश का सच्चा स्वरूप नहीं है वैसा ही सत्य, समता, शान्ति के बिना समस्त धार्मिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक, कानूनी क्रिया-कलाप सच्चा नहीं है।

- आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

4 प्रगतिशीलता या प्रतिगामी

''गच्छति इति जगतः'' अर्थात् जो गतिशील हो, प्रगतिशील हो उसे जगत् कहते हैं। जगत् के प्रत्येक द्रव्य **''उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्''** के अनुसार नवीन–नवीन अवस्थाओं को प्राप्त करते हैं, प्राचीन अवस्थाओं का त्याग करते हैं तथा स्वसत्ता में ध्रौव्य रहते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि द्रव्य या जीव को आगे विकास करने के लिए प्राचीन अवस्थाओं का त्याग करते हुए तथा ध्रुव सत्य को अपनाते हुए आगे बढ़ना चहिए। नदी भी जल के प्रवाह से बनती है और जो नदी बहती रहती है उसका पानी स्वच्छ पीने योग्य रहता है परन्तु जिस गढ्ढे का पानी स्थिर हो जाता है वह पानी सड़ जाता है। डार्विन के विकासवाद तथा विशेषतः जैन विकासवाद के अनुसार जीव की प्रगतिशीलता निगोद से प्रारम्भ होकर सिद्ध अवस्था में पूर्ण होती है। इससे सिद्ध होता है कि जीव का मूल स्वभाव विकास है इसीलिए जिससे जीव के आंतरिक गुण यथा– आत्मविश्वास, विवेक, सदाचरण धैर्य, सहिष्णुता, समता, संवेदनशीलता आदि बढ़ते हैं वे सर्व प्रगतिशीलता है। क्योंकि जीव पूर्णतः चैतन्य द्रव्य है। सामान्यतः विज्ञान के अनुसार भी जीव का विकास आन्तरिक होता है और जड़ वस्तु का विकास बाह्यतः होता है।

आध्यात्मिक विज्ञानानुसार शुद्ध जीव को परम ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर, प्रभु, विभु, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्येष्ठ आदि रूप में कहा गया है। शुद्ध जीव परम विस्तारशील होने से, 'परमब्रह्म' स्व निर्माता होने से ''ब्रह्मा'' व्यापक गुण से युक्त होने से विष्णु, ऐश्वर्य सम्पन्न होने से ईश्वर, प्रभुत्व सम्पन्न होने से ''प्रभु'' वैभव सम्पन्न होने से ''विभु'' अनंतशक्ति सम्पन्न होने से ''सर्वशक्तिमान्'' समस्त विषयों का ज्ञाता होने से ''सर्वज्ञ'' सबसे उच्च–ज्येष्ठ–श्रेष्ठ होने से क्रमशः ''सर्वोच्च'' ''सर्वश्रेष्ठ'' ''सर्वज्येष्ठ'' हैं। यह सर्वगुण जीव के आन्तरिक / आध्यात्मिक विकास के सूचक हैं। इससे सिद्ध होता है कि जीव प्रगतिशील द्रव्य है। अर्थात् प्रगति करना उसका धर्म / गुण / प्रकृति / अधिकार / सहज–स्वभाव है। महामानव, महात्मा, सज्जन, साधु, संत, साधक, युगपुरुष, धर्मप्रचारक, बुद्ध, अरिहन्त, तीर्थंकर, सिद्ध, परमब्रह्म आदि उसकी प्रगतिशीलता के विभिन्न रूप हैं/अवस्थायें है। परन्तु नैतिक, आध्यात्मिक उन्नति के बिना या इसकी अवनति सहित बौद्धिक / शारीरिक / भौतिक / आर्थिक / शैक्षणिक या

सत्तात्मक प्रगति यथार्थ से प्रगति न होकर प्रतिगामी है, विनाश है। जैसा कि आत्मा रहित शरीर शव है; जड़ है। इस पर विभिन्न पहलुओं से विचार कर रहे हैं।

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को जब ज्ञान–वैराग्य हो जाता है तब समस्त विषय–भोग, राज्य–वैभव को त्याग करके दिगम्बरत्व स्वरूप सर्व सन्यास व्रत लेकर मौन रूप से 6 महीने तक आध्यात्म साधना में लीन रहे/आत्मध्यान करने में लगे रहे। उनकी देखादेखी अंधानुकरण करते हुए 4 हजार राजाओं ने भी दीक्षा धारण कर ली अर्थात् नग्न वेष धारण कर लिया। परन्तु कुछ ही दिनों में भूख–प्यास की पीड़ा से विचलित होकर विभिन्न मिथ्या / ढोंगी / पाखण्डी रूपों को धारण कर विभिन्न अंधविश्वासपूर्ण धर्म की साधना / आराधना तथा प्रचार–प्रसार करने लगे। उनका प्रभाव अभी भी जो विभिन्न धर्मान्ध परम्परायें है उसमें भी होना संभव है। भ. ऋषभदेव का उद्देश्य / मार्ग / साधन / साध्य / सर्वोच्च / सम्यक् होते हुए भी वे राजा जो अपनी शक्ति – भक्ति भावना को जाने बिना अंधानुकरण करने से वे न गृहस्थ रह पाये, न सन्यासी बन पाये, न शारीरिक सुख–सुविधाओं का भोग–प्रयोग कर पाये, न आन्तरिक सुख प्राप्त कर पाये। फिर जो नीच, भ्रष्ट, भोगी, रागी, आततायियों का अंधानुकरण करते हैं उनकी दशा का तो सहज अनुमान हो जाता है। जो अंधानुकरणशील–प्राचीनपंथी लोग पहले के महापुरुष या लोग जो कुछ किये थे उसको सर्वथा सही मानते हैं तथा कुछ अंधानुकरण भी करते हैं। इसीप्रकार कुछ विवेकहीन, आधुनिकता का ढोंग करने वाले प्राचीन महापुरुष या महान् परम्परा, संस्कृति, सभ्यतादि को मिथ्या मानते हैं परन्तु आधुनिक नेता / अभिनेता, हीरो–हीरोइन, नट–नटी खिलाड़ी, खलनायक, मॉडल, धनी, विदेशी आदि के अंधभक्त बनते हैं, अंधानुकरण करते हैं। यथा– पहले के कुछ लोग अधिक स्त्रियाँ रखते थे तो अभी भी कुछ लोग अधिक स्त्री रखेंगे, युधिष्ठर जुआ खेलते थे तो अभी भी दीपावली में जुआ को धर्म मानकर खेलेंगे। इसी प्रकार भांग–गाँजा, पशुबलि, सतीदाह, माँस भक्षण, सुरापान, देवदासी–दासप्रथा, दहेज, श्राद्ध–मृत्यु भोज, परदाप्रथा, बालविवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, बहु–विवाह, तलाक, ऊँच–नीच, घृणा भाव, काला–गोरा–नफरत, विधर्मी–विद्वेष, विध्वंस / अन्याय, क्रूरतापूर्ण–धर्मयुद्ध, धर्मपरिवर्तन, धार्मिक मूर्ति, मंदिर, भजन आदि प्राचीन पंथी रुढ़िवादी प्रतिगामी है।

प्राचीन पंथी प्रतिगामी के समान ही अनेक आधुनिक–पंथी–प्रतिगामी हैं। यथा– कुछ मानसिक सांस्कृतिक पगलों के अश्लील,अनैतिक, अैज्ञानिक, अस्वास्थकर,

वेषभूषा, खान–पान, रहन–सहन, अभिनय, एक्टिंग, डायलॉक, स्टाइल का अंधानुकरण करके जोकर जैसा बर्ताव करना; साक्षरता, पुस्तकीय जानकारी को ही शिक्षा/ ज्ञान/ संस्कार मानना; विदेशी नर–नारीयों के जैसा रहन–सहन करना आदि को ही आधुनिकता मानना, शारीरिक श्रम न करने को "स्टेटस सिम्बोल" मानना, टाँगतोड़ अयोग्य रीति से भी मध्य मध्य में 1–2 अंग्रेजी शब्द बोलने को Up to date मानना, खड़े–2 पशुवत् मल–मूत्र त्याग करना, जूते–चप्पल, टाई पहनकर बिना हाथ–पैर–मुँह धोये डिनर, लंच करने को अंग्रेजी बाबू मानना, फैशन के नाम पर हिंसात्मक, अस्वास्थकर नेनपालिश, लिपिस्टिक, शैम्पू, साबुन, पाउडर, क्रीम, टूथपेस्ट, ब्रुश आदि का प्रयोग करना, हेयर स्टायल, रीढ़ तोड़ हाई हिल चप्पल, कृत्रिम हिंसात्मक बाजारु भोजन आदि आधुनिक प्रगतिशीलता के नाम पर वस्तुतः प्रतिगामी है।

जिस प्रकार चक्कर लगाने (स्वअक्ष में घूमने) वाले बच्चे को अन्य वस्तुयें घूमती हुई दिखाई देती हैं। इसीप्रकार जीव जब तक बौद्धिक/नैतिक/ आध्यात्मिक/ भावात्मक/धार्मिक/ आर्थिक / सत्तात्मक चक्कर / भ्रम / मोह / आसक्ति / मिथ्यात्व / अयथार्थता से निवृत्त नहीं होगा और सत्य, समता, विवेक, अनुभव, सदाचार रूपी वास्तविक स्थिर आधार पर स्थित नहीं होगा तब तक स्वयं को प्रगतिशील मानते हुए, जताते हुए भी यथार्थ से प्रतिगामी / मिथ्यादृष्टि / संकीर्ण / स्वार्थी / अज्ञानी / मूढ़ / अविकसित ही रहेगा। यथा –

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभाव लभते नहि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मद कोद्रवेः॥

मोह से आवृत ज्ञान स्व स्वभाव को प्राप्त नहीं होता है / यथार्थ सत्य तथ्य को नहीं जान पाता है। जैसा कि कोदु (नशाकारक धान्य) खाकर मदोन्मत्त हुआ व्यक्ति यथार्थ स्वरुप को नहीं जान पाता है। इससे निष्कर्ष रूप में सिद्धान्त प्राप्त होता है कि परिशुद्ध, पवित्र ज्ञान से ही यथार्थ से वस्तु परिज्ञान होता है।

यद्यदाचरितं पूर्वं तत्त्वदज्ञानं चेष्टितम्।
उत्तरोत्तर विज्ञानाद्योगिनःप्रतिभाषते॥ (251) आत्मानुशासन।

अर्थात् जो–जो पूर्व में आचरण किये गये थे वे सब अज्ञानमूलक थे। ऐसा ज्ञान उत्तरोत्तर विज्ञान से समत्व गुणधारी आत्मध्यानी योगी को होता है अर्थात्

उत्तरोत्तर विज्ञान से समत्व गुणधारी आत्मध्यानी योगी को होता है अर्थात् उत्तरोत्तर निर्मल साम्य–विज्ञान के बिना अज्ञान––मोहासक्त–कार्य यथार्थ लगते हैं। बेहोश का ज्ञान / भान बेहोशी के नाश होने पर सजग / चेतनावस्था में होता है न कि बेहोश / अचेतनावस्था में होता है। मैंने जो हजारों तथाकथित धार्मिक / अधार्मिक, शिक्षित / अशिक्षित, प्राचीनपंथी–आधुनिकपंथी ग्रामीण एवं शहरी व्यक्तियों का अध्ययन किया है वे अधिकांशतः प्रतिगामी ही पाये गये। भले ही वे स्वयं को प्रगतिशील तथा दूसरों को प्रतिगामी क्यों न मानते हो / बताते हो।

5 क्या मनुष्य ही सर्वथा महान् है?

सुलझे पशु उपदेश सुन तू क्यों न सुलझे पुमान।
नाहर से भये वीर प्रभु गज से पार्श्व महान्॥

उपर्युक्त दोहे से सिद्ध होता है कि कभी–2 पशु भी मनुष्य से श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर लेता है। भगवान् ऋषभदेव का पौत्र एवं भरत चक्रवर्ती का पुत्र मारीचि भगवान् के उपदेश को सुनकर भी भ्रष्ट हो गया और उसने विभिन्न धार्मिक भ्रष्टाचारों का प्रचार–प्रसार किया। परन्तु एक सिंह मुनि के उपदेश को सुनकर अहिंसक बनकर धर्म की साधना से आगे जाकर भगवान् महावीर बना। ऐसे ही एक हाथी धर्म की साधना से भगवान् पार्श्वनाथ बना। इससे सिद्ध होता है कि अधिक सत्ता, बुद्धि, उपलब्धि का दुरुपयोग करने वाला मनुष्य से वह पशु श्रेष्ठ है जो अपनी कम बुद्धि आदि का सदुपयोग करता है। जैसा कि प्रचुर दूषित जल की तुलनामें कम शुद्ध जल अधिक उपयोगी है।

कुछ शारीरिक, बौद्धिक, संवेदनशीलता के दृष्टिकोण से भी कुछ पशु मनुष्य से श्रेष्ठ हैं। जैसे कि कुछ पशु–पक्षी यथा– कुत्ता, घोड़ा, मछली, पक्षी आदि यहाँ तक कि मधुमक्खी, चींटी, वृक्ष तक भूकम्प, वर्षा आदि का पूर्वाभास करके पहले से ही सतर्क हो जाते हैं जितना कि वर्तमान वैज्ञानिक आधुनिक युग में वैज्ञानिक उपकरणों से वैज्ञानिक भी पूर्वानुमान नहीं लगा पाते हैं। विशेष जिज्ञासु मेरी **''भविष्यफल विज्ञान''** कृति का अध्ययन करें। मनुष्य, स्वयं को सामाजिक प्राणी मानता है और बखान करते हुए भी कुछ कीट–पतगों की सामाजिकता और संगठन

के आगे बौना होता है। संगठन की दृष्टि से मधुमक्खी, चींटी, हाथी, गोरिल्ला, बंदर, बतख, भेड़िया, सिंह आदि का संगठन मनुष्य से भी श्रेष्ठ है। वनस्पति से लेकर कीट पतंगें जितने स्व–पर उपकारी हैं उतना स्व–पर उपकारी मनुष्य नहीं है। गाय, भेंस, बकरी आदि घास–फूस; पानी खा–पीकर दूसरों के लिए दूध, घी, गोबर, मूत्र प्रदान करते हैं। मधुमक्खी मधु संग्रहण (संचय) करती है। हाथी, ऊँट, गधा, बैल, घोड़ा, खच्चर आदि भारवहन एवं सवारी का काम करते हैं। कुछ कीट–पतंग, पक्षी बिना दूसरे यंत्रों के सहायता से आकाश में उडते हैं और जलचर जीव जल में जैसे गोताखोरी करते हैं वैसा मानव नहीं कर सकता। वनस्पति वृक्ष आदि निम्न श्रेणीय–प्राणी जगत् के लिए अत्यन्त उपकारी हैं। इनसे फल, अनाज, औषधि, फूल, तिलहन, लकड़ी, छाया यहाँ तक कि प्राणवायु मिलती है। उपर्युक्त दृष्टिकोण से भी मनुष्य से मनुष्येत्तर प्राणी श्रेष्ठ हैं।

विश्व इतिहास साक्षी है कि विश्व में जितना मनुष्य ने युद्ध, विध्वंश, पापाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अन्याय, प्रकृति का दोहन एवं शोषण, प्रकृति के नियमों का उल्लंघन, परपीड़ा, संक्लेश, कूट, विद्रोह, आतंक आदि किया है उतना मनुष्येतर प्राणी ने नहीं किया है। मनुष्य से जितना प्रदूषण फैलता है उतना मनुष्येतर प्राणी से नहीं फैलता है। ग्राम, नगर जितने प्रदूषित होते हैं उतने जंगल प्रदूषित नहीं होते। इसके साथ–2 मनुष्य का मृत शरीर जितना ग्लानिकर, अपवित्र दुर्गन्धयुक्त है ऐसा अन्य पशु–पक्षियों का नहीं है। इसके साथ–2 मनुष्य भौतिक संग्रह, भौतिक प्रगति, युद्ध, यातायात आदि के कारण जितना वायु, जल, शब्द, मृदा, भाव प्रदूषण करता एवं फैलाता है उतना अन्य जीव नहीं करते हैं।

वनस्पति प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के माध्यम से अपना भोजन स्वयं बनाने की क्षमता रखती है। इस क्रिया में जल, CO_2 पर्णहरित तथा सूर्य के प्रकाश का उपयोग करती है। जबकि मनुष्य अपने भोजन के लिये वनस्पति पर निर्भर रहते हैं। इस कारण से मनुष्य वनस्पति की अपेक्षा अधिक परावलम्बी, परोपजीवी हैं। मनुष्य के अभाव से वनस्पति से लेकर पशु–पक्षी आदि जीवित रह सकते हैं और जंगल के वृक्ष, पशु–पक्षी आदि अभी भी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। परन्तु क्या कोई मनुष्य वनस्पति एवं पशु–पक्षी के बिना जीवित रह सकता है? कदापि नहीं। इससे भी मनुष्य की क्षुद्रता तथा अन्य की महानता सिद्ध होती है। उपकारी पशु–पक्षियों की निर्मम हत्या जितनी मनुष्य करता है क्या ऐसा व्यवहार पशु–पक्षी मनुष्य के साथ करते हैं? इसीलिए कोई केवल मनुष्य जन्म प्राप्त करके महान् नहीं होता है। कहा भी है–

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आहार निद्रा, भय, मैथुन ये पशु और मनुष्यों में समान हैं। मनुष्यों में केवल (धर्म, सदाचार, विवेक, सत् विश्वास आदि) ही अधिक है और जो ऐसे विशिष्ट गुणों से रहित होता है वह मनुष्य यथार्थ से पशु के समान है अर्थात् वह मनुष्याकार पशु है। कहा भी है–

येषां न विद्या तपो न दानम् ज्ञानं न शीलम् गुणो न धर्मः
ते मर्त्यलोके भुवि भार भूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

जो विद्या अध्ययन नहीं करते हैं, सत्कार्य के लिए तपस्या आदि पुरुषार्थ नहीं करते हैं, परोपकार के लिए दान नहीं देते हैं, ज्ञानार्जन नहीं करते हैं, शालीनता, नम्रता, सौजन्यता आदि गुणों से युक्त नहीं होते हैं, अहिंसा, सेवा, परोपकार आदि धर्म का पालन नहीं करते हैं वह इस मनुष्य लोक में पृथ्वी का भार स्वरूप होकर मनुष्यरूप में पशु के समान विचरण करते हैं।

कथंचित् कर्मवशात् (क्षयोपशम से) कुछ उपलब्धि हो जाने पर स्वार्थनिष्ठ, संकीर्ण, कलुषित भावना वाला मनुष्य भी उपलब्धि का सदुपयोग नहीं कर पाता है। परन्तु अधिकांशतः दुरुपयोग ही करता है। यथा–

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्ति परेषां परपीडनाय।
खलस्य साधो विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अपवित्र विचार वाला दुर्जन विद्या को प्राप्त करके वाद–विवाद, कलह करता है, धन को प्राप्त करके भोग–राग, दिखावा, कलह, अहंकार में मस्त हो जाता है, शक्ति प्राप्त करके दूसरों को सताता है। पवित्र विचार वाला सज्जन इससे विपरीत विद्या से स्व–पर अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान रूपी प्रकाश को प्रकाशित करता है, धन प्राप्त करके योग्य क्षेत्र में, योग्य व्यक्ति को दान देता है तथा शक्ति से दूसरों की रक्षा करता है। अधिकांशतः सत्ता / सम्पत्ति / बुद्धि / शक्ति / साक्षरता से युक्त मानव ही दानव / असुर / राक्षस है। नारायण कृष्ण के मामा 'कंस' धनपति कुबेर का भाई (बाल्मीकि रामायणानुसार) विद्याधर प्रतिनारायण (जैन धर्मानुसार) 'रावण' को 'दानव' इसीलिए कहा गया क्योंकि उन्होंने सत्ता, शक्ति, बुद्धि, उच्च वंश आदि से युक्त होने पर भी अनैतिक, पापात्मक कार्य किये और 'देवकी' 'विभीषण' को पूज्यनीय माना गया। इसीप्रकार

हिरण्यकश्यप को तो 'राक्षस' माना गया और उसके पुत्र 'प्रहलाद' को 'भक्त प्रहलाद' कहा गया। पुराणों में वर्णित अधिकांश 'राक्षस' सत्ता / शक्ति आदि से युक्त पाये जाते हैं जो कि युद्ध, हत्या, अपहरण, बलात्कार में लिप्त रहते हैं। उनकी सत्ता / बुद्धि / विद्यादि स्व–पर, विश्वकल्याणकारी रचनात्मक कार्यों में कम प्रयोग में आती है परन्तु इससे विपरीत कार्यों में अधिक प्रयोग में आती है। पढ़ने सुनने में आता है कि रावण नरक को मिटाकर स्वर्ग के लिए निशेणी बनाना चाह रहा था परन्तु सीताहरण रूपी कुकृत्य करके लंका सहित स्वयं का भी नाश कर दिया। भले यह अलंकारिक उदाहरण है परन्तु इससे शिक्षा मिलती है कि मानव सत्तादि प्राप्त करके अच्छा कार्य तो नहीं करता है परन्तु बुरा कार्य करता है। कहा भी है–

यौवन धन सम्पत्ति प्रभुत्वविवेकिता।
एकैकमपि अनर्थाय विमु यत्र चतुष्टयम्॥

अर्थात् यौवन, धन, सम्पत्ति, प्रभुत्व (सत्ता) और अविवेक में से एक–2 भी अनर्थ के लिए है तो जहाँ चारों हो जायें वहाँ कहना क्या ? अर्थात् अधिक अनर्थ होता ही है।

जो राजा–महाराजा, सम्राट, चक्रवर्ती आदि दिग्विजय लूट–पाट करते थे क्या वे गरीब (निर्धन) भोन्दू (कम I.Q. मन्दबुद्धि) वाले थे ? क्या वे भोजन के अभाव में भूखे रहते थे जिसके कारण उन्होंने ये सब किया ? क्या कभी गरीब, भिखारी, सत्ता, सम्पत्ति आदि से रहित व्यक्ति ने आक्रमणादि किया है ? इन सब प्रायोगिक ज्वलन्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि मानवने सत्ता, सम्पत्ति, बुद्धि आदि से रचनात्मक मंगलमय कार्य कम किये हैं परन्तु विध्वंसात्मक अमंगलमय कार्य अधिक किये हैं।

प्राचीन काल से अभी तक प्रायोगिक रूप से यही पाया जाता है कि मानव नीच, दुष्ट, संकीर्णता, स्वार्थ को नहीं छोड़ता है भले वह धर्म, शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, भाषा, वेशभूषा, रंग–रूप, आधुनिकता, प्रगतिशीलता, वैज्ञानिकता आदि का मुखोटा क्यों न पहन ले। इसीलिए तो मानव उतना विकास नहीं कर पाया है जितना कि उसे सापेक्ष दृष्टि से अपेक्षित विकास करना चाहिए था। अभी तक जो विभिन्न देशों के विभिन्न क्षेत्रों के (धर्म–दर्शन–विज्ञान, गणित, साहित्य सेवा, समाज सुधारक, चिकित्सा, राजनीति, कानून आदि के) महापुरुष हुए हैं और उनने जो कार्य किये हैं, उपदेश, आदर्श प्रस्तुत किये उसका अनुकरण / सदुपयोग मनुष्य ने कम किया परन्तु उसके विपरीत आचरण तथा दुरुपयोग अधिक किया है। भले वह उनका सच्चा अनुयायी, उत्तराधिकारी, संरक्षक, संवर्द्धक क्यों नहीं

कहता फिरता हो तथा उनकी पूजा, आरती, गुणगान, भाषण, लेखन, प्रशस्ति, स्तुति क्यों नहीं करता हो? महापुरूषों ने जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, सदाचार, सहिष्णुता, सद्व्यवहार आदि को अपनाया तथा दूसरों को भी अपनाने के लिए कहा वैसा क्या मानव ने किया? क्या कृष्ण तथा विदुर के हितोपदेश के अनुसार दुर्योधन चला? क्या विभीषण की नीति रावण ने मानी? दुर्योधन कहता था **''जानामि धर्मं न मे भजामि, जानामि अधर्म न में त्यजामि''** अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ परन्तु नहीं मानता हूँ, नहीं चलता हूँ तथा अधर्म को जानता हूँ परन्तु अधर्म को नहीं त्यागता हूँ। ऐसे ही मानव राम का नाम लेते हैं परन्तु काम करते हैं रावण का। कहा भी है– **''मुँह में राम नाम बगल में छुरी''**।

एकबार एक व्यक्ति ने वैज्ञानिक आईन्स्टीन से प्रश्न किया कि तृतीय विश्व युद्ध होगा तो क्या होगा? तब आईन्स्टीन ने कहा– मैं तृतीय विश्व युद्ध के बारे में नहीं कह सकता हूँ परन्तु चौथा विश्वयुद्ध होगा तो मानव पत्थर से युद्ध करेगा। प्रश्नकर्ता ने पुनः प्रश्न किया कि ऐसा क्यों? उन्होंने उत्तर दिया कि तृतीय विश्वयुद्ध में इतना विध्वंश हो जायेगा जिससे समस्त ज्ञान–विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, अस्त्र–शस्त्र नष्ट हो जायेंगे जिससे वे दीन–हीन, असभ्य, अज्ञानी, कंगाल, जंगली हो जायेंगे और चतुर्थ विश्वयुद्ध में परस्पर पत्थर से युद्ध करेंगे। इस उदाहरण में अनेक रहस्य हैं। यथा–

दुष्ट मानव अपनी दुष्टता के कारण उपलब्धियों का दुरुपयोग करके, महापुरुषों द्वारा उपार्जित उपलब्धियों को नष्ट करके, मानवीय संस्कृति को प्रतिगामी, विकृत, विश्वंस करता है। यदि वह सतत्, सम्यक् विकास करता तो अभी तक वह इतना विकास कर लेता कि बिना कम्प्यूटर से वह करोड़ों डीजिट वाला अंक का घात, प्रतिघात, गुणन, योग–वियोग, भागाहार को एक सेकेन्ड के अरबोंवाँ भाग में जान लेता, बिना सूक्ष्मदर्शक यंत्र से परमाणु से भी अधिक अदृश्य द्रव्य / प्रदेश को जान लेता, बिन दूरबीन से करोड़ों प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित परमाणु का ज्ञान कर लेता, बिना फोन, टी.वी., रेडियों से समस्त ब्रह्माण्ड के दृश्य श्राव्यों को देखता, जानता, अनुभव करता, बिना भौतिक संसाधन के अत्यन्त सुख–शांति का अनुभव करता। इसे ही आध्यात्मिक भाषा में मोक्ष, मुक्ति, परिनिर्वाण, भगवत् स्वरूप, सच्चिदानंद–स्वरूप, सत्यं शिवं सुन्दरं कहते हैं। अतएव हे मानव! उठो जागो! और तब तक प्रयत्नशील बनो जब तक महान् / भगवान् नहीं बन जाते हो। महान् बनना तुम्हारा शुद्ध स्वभावागत अधिकार है।

6 विविध

A भगवान महावीर की महानता और व्यक्ति की क्षुद्रता

(भगवान महावीर की २६००वीं जन्म जयंती के उपलक्ष्य में भगवान् महावीर का दिव्यसंदेश)

भगवान् महावीर केवल एक व्यक्ति नहीं थे परन्तु एक महान् आदर्श व्यक्तित्व के धनी, आत्मदृष्टा के साथ–साथ विश्वदृष्टा, आत्मानुशासक के साथ–साथ शास्ता / आप्त / धर्मप्रवर्तक / तीर्थंकर; आत्मज्ञ के साथ–साथ विश्वज्ञ / महावैज्ञानिक / आत्मकल्याणकर्ता के साथ–साथ समाज, राष्ट्र, विश्वकल्याणकर्ता थे। वे निश्चित काल, क्षेत्र, वंश, जाति में जन्म लेने के बाद भी उनके सिद्धांत उस कालादि सीमा से परे सार्वभौम, वैश्विक, सार्वकालिक, 'सर्व जीव हिताय सर्व जीव सुखाय थे।' इसीलिए महावीर के कोई एक निश्चित काल, क्षेत्र, धर्म संप्रदाय, जाति, वंश, यहाँ तक कि मनुष्य जाति की सीमा में भी नहीं बाँधा जा सकता है। जैसा कि आकाश को किसी भी सीमा क्षेत्र में नहीं बाँधा जा सकता। वे पवित्रता, समृद्धि सत्ता, विभुति, त्याग, ज्ञान, मुक्ति, शक्ति आदि की परमोत्कृष्टतम सीमा के उदाहरण थे और अभी भी हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित कुछ महानतम सिद्धांतों के बारे में निम्न प्रकार चर्चा कर रहे हैं।

1. अनेकान्त :– भगवान महावीर ने जाना, माना और कहा था कि प्रत्येक जीव, द्रव्य, पर्याय, घटना, गुण अनेकान्तात्मक / सापेक्ष होते हैं इसीलिए इन्हें अनेकान्त की दृष्टि से ही जानना–मानना एवं कहना चाहिए। इससे जीव में सत्यग्राहिता, व्यापकता, उदारता, सहिष्णुता, भाव–अहिंसा, मृदुता, जिज्ञासा, एकता आदि गुण प्रकट होंगे जिससे जीव धीरे–धीरे विकास करता हुआ जीव से जिनेंद्र, बुद्धु से बुद्ध, खुद से खुदा, मानव से भगवान बन जायेगा। परन्तु अधिकांश जीव यहाँ तक कि जो स्वयं को महावीर का सच्चा अनुयायी कहता फिरता है उसमें भी अनेकान्त के बदले में एकान्त, सत्यग्राहिता के परिवर्तन में हठग्राहिता, व्यापकता के बदले में कूपमण्डूकता, उदारता के बदले में संकीर्णता, सहिष्णुता के बदले में असहिष्णुता, ईर्ष्याभाव, अहिंसाभाव के बदले में धूर्तता, कटुता, तृष्णा, धोखाधडी, मद आदि, मृदुता के बदले में कठोरता, जिज्ञासा के बदले में पूर्वाग्रह,

एकता के बदले में फूट आदि दुर्गुण पाये जाते हैं।

2. अहिंसा :– आत्मा की शुद्ध, सहज, पवित्रता, सरलता, उदारता रूपी भावना ही यथार्थ से अहिंसा है। इससे युक्त होकर दूसरों की रक्षा, सहायता, सेवा ही द्रव्य अहिंसा है। संक्षिप्ततः पवित्र भावना से युक्त सद्व्यवहार ही अहिंसा है। सामान्यतः जीव यहाँ तक कि महावीर के अनुयायी कहनेवाले भी ऐसी अहिंसा से दूर रहते हैं। कुछ धन के लिए तो कुछ तन के लिए, तो कुछ नाम के लिए, तो कुछ मत के लिए दोनों प्रकार (द्रव्य हिंसा + भाव हिंसा) की हिंसा करते हैं और अहिंसा का स्वांग रचाते हैं। ज्यादा से ज्यादा अहिंसा देवालय, भोजनालय, वाँचनालय में ही होती है परन्तु कार्यालय, न्यायालय, हृदयपटल में नही होती हैं। धर्मकार्य में जिससे आनुसंगिक द्रव्यहिंसा हो जाती है उससे घृणा, द्वेष, हीन व्यवहार करके गर्हित महा भावहिंसा करके स्वयं को महा अहिंसक सिद्ध करते हैं।

3. अपरिग्रह :– स्वशुद्ध आत्मा को छोड़कर समस्त तृष्णा, घृणा, असहिष्णुता, द्वेष, अहंकार आदि अन्तरंग परिग्रह तथा धन, सम्पत्ति आदि बाह्यद्रव्य–परिग्रह है। परिग्रह को भी भगवान् महावीर ने हिंसा ही कहा है। स्वशक्ति के अनुसार उपर्युक्त परिग्रह का त्याग करना ही सुख, शांति, मोक्ष का मार्ग है परन्तु जीव दोनों प्रकार के परिग्रह को बढाने में ही लगा रहता है। यहाँ तक कि भगवान महावीर के अनुयायी कहलाने वाले भी इस अंधी दौड़ में सम्मिलित हैं। परिग्रह के कारण दूसरों का शोषण, मिलावट, धोखाधड़ी, कूट / कपट, झूठ, दगाबाजी करते हैं जिससे हिंसा, चोरी, परिग्रह आदि पापों का संचय करते हैं। कहाँ तक कहा जावे धार्मिक विधि विधान, पंचकल्याणक, चातुर्मास, मंदिर–मूर्ति निर्माण, केशलोंच, पिच्छी परिवर्तन, समाधिमरण संस्कार आदि में भी परिग्रह का ही बोलबाला है।

4. विश्वबंधुत्व :– द्रव्यदृष्टि से प्रत्येक जीव समान होने से सर्व जीवों के प्रति साम्यभाव रखने के लिए भगवान् महावीर ने कहा था। इससे विश्व में शान्ति की स्थापना होती है। परन्तु जीव सत्ता, सम्पत्ति, यश–कीर्ति, धर्म के लिए हिंसा विषमता, युद्ध तनाव, क्लेश, ईर्ष्या आदि अधिक करता है। भगवान् महावीर के अनुयायी कहलानेवाले भी धन–मान–नाम–सम्मान के लिए या धर्म के नाम पर भगवान् महावीर के अनुयायियों से भी घृणा, द्वेष, वैरभाव, ईर्ष्या करते हैं और फूट डालते हैं। अतएव जीव को शान्ति चाहिए तो भगवान् महावीर के चरण वन्दन से उनका आचरण, भगवान् महावीर रूपी व्यक्ति से उनके व्यक्तित्व का अनुकरण,

मंदिर में भगवान महावीर की मूर्ति स्थापना से मन मंदिर में मूर्तिमान की स्थापना, केवल मंदिर आदि में द्रव्य अहिंसा से भी व्यवहार में द्रव्य–भाव अहिंसा का पालन केवल आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आओ हम सब मिलकर भगवान महावीर की २६००वी जन्म जयन्ती में उनके सिद्धान्तों को अपनाकर स्व–पर विश्व कल्याण करें।

B भगवान महावीर की २६००वीं जन्म जयन्ति को मनाने का अधिकारी कौन?!

महापुरुषों की जन्मजयन्ती आदि मनाना या उनकी पूजा प्रार्थनादि करने का मुख्य उद्देश्य है उनके गुणानुस्मरण के साथ–साथ गुणानुकरण करना / उनके चरण–स्मरण के साथ–साथ उनके आचरण का अनुकरण करना तथा दूसरों को भी प्रेरित करना। जैसा कि प्रज्ज्वलित दीपक के सम्पर्क में बुझा हुआ दीपक प्रज्ज्वलित होकर दूसरे दीपक को भी प्रज्ज्वलित करता है, दूसरों को प्रकाशित करता है। वैसा ही भगवान महावीर की २६००वीं जन्मजयन्ती को सफल बनाने का एक उपाय है भगवान महावीर के आदर्शों को स्वयं आत्मसात करके दूसरों को भी उन आदर्शों को अपनाने के लिए प्रेरित करना। जो ऐसा करता है वही भगवान की जन्मजयन्ती मनाने का अधिकारी है। इस अधिकार को प्राप्त करने के कुछ कर्त्तव्य निम्नोक्त है

(1) अनेकान्त :– भगवान महावीर का सर्वोत्तम सिद्धान्त / आदर्श / धर्म है अनेकान्त / भावों को उदार, उदात्त, सहिष्णु, व्यापक, असंकीर्ण, सरल–सहज बनाना तथा सत्य का जिज्ञासु रहना अनेकान्त है। Right is mine मानना परन्तु Mine is Right नहीं मानना। तार्किक दृष्टिकोण रखते हुए भी पक्षपात, पूर्वाग्रह, हठाग्रह, कठोरता, हृदय, शून्यता नहीं होना। श्रद्धा रखते हुए भी विवेकशील, तर्कशील, कर्त्तव्यनिष्ठ होना। अनन्त जीव हैं, उनके कर्म भी भिन्न हैं, इसीलिए प्रत्येक संसारी जीव के भाव, कर्म, कथन, भोजन, वस्त्रादि का भिन्न–भिन्न होना स्वाभाविक है। अतः किसी से भी अनावश्यक अप्रयोजनभूत वाद–विवाद, झगड़ा–कलह, वैमनस्य, राग, द्वेष नहीं रखना चाहिए। प्रत्येक जीव के प्रति मित्रता, गुणियों के प्रति प्रमोद / वात्सल्य, दुखियों के प्रति कृपा / सेवा / दयाभाव तथा दुष्ट / क्रूर / विधर्मी के प्रति माध्यस्थ /समता भाव का व्यवहार करना। इससे भावों में पवित्रता, वचनों में मधुरता, व्यवहार में सरलता, समाज–राष्ट्र विश्व में एकता का संचार होता है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक धर्मावलम्बियों को तथा जैनियों को

आत्म विश्लेषण करना है कि क्या वे इस अनेकान्त को श्रद्धा, ज्ञान, आचरण वचन में अपनाते हैं ? क्या वे पंथ, ग्रंथ, संत को लेकर अनेकान्त की निर्मम हत्या करने से बचते हैं ? क्या वे साधार्मियों से भी उदारता, सहिष्णुता का व्यवहार करते हैं ? यदि उत्तर विधिपरक है तो वे सच्चे धार्मिक हैं, और वे ही भगवान महावीर की जन्म जयन्ती मनाने के अधिकारी हैं।

(2) **अहिंसा :–** भगवान महावीर का दूसरा महान् सिद्धान्त हैं अहिंसा। कषाय भाव से रहित भावों की पवित्रता रूपी भाव अहिंसा के साथ–साथ दूसरों को सर्वथा कष्ट न पहुंचाकर सुख पहुँचाना, सेवा / सुरक्षा करना अहिंसा है। इसके लिए मन, वचन, काय, कृत कारित, अनुमोदन से पवित्र रहना, पवित्र बोलना, पवित्र व्यवहार करना, पवित्र खाना, पवित्रता से धन कमाना, पवित्र वस्तुओं का प्रयोग करना आदि अहिंसा है। इसके बिना अहिंसा मृगमरीचिका के समान है। अहिंसा से प्रत्येक जीव की सुरक्षा, समृद्धि होती है, युद्ध हत्या आतंक आदि नहीं होते हैं, पर्यावरण की सुरक्षा होती है, जीवों को क्षति नहीं पहुँचती, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल, भूकम्प आदि नहीं होते हैं।

धर्मात्माओं को आत्मविश्लेषण करना है कि क्या वे व्यापार भोजन, व्यवहार, फैशन आदि में अहिंसात्मक पद्धति से अहिंसापारक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं क्या वे स्वयं तो हिंसात्मक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते हैं पर वे व्यपार में भी हिंसात्मक वस्तुओं (चर्म निर्मित वस्तु, बीड़ी, सिगरेट, पानपराग, नेलपोलिश, लिपिस्टिक, शेम्पु आदि) का प्रयोग / व्यवसाय नहीं करते हैं ? यदि व्यापार से लेकर व्यवहार में अहिंसा है तो वे जन्म जयन्ती मनाने के लिए उत्तम पात्र हैं।

(3) **वीतरागता :–** भगवान महावीर का एक और बड़ा सिद्धान्त है 'वीतरागता'। समस्त अन्तरंग, बहिरंग, परिग्रह, बंधन, ग्रंथि, अनात्म– वस्तुओं से ममत्व / आसक्ति / तृष्णा / राग को दूर करके स्वशुद्धात्म की साम्यावस्था में स्थिर होना ही वीतरागता है। स्व–स्व भूमिका / अवस्था के अनुसार इसे प्राप्त करना प्रत्येक धर्मात्मा का कर्त्तव्य है। इसे ही मोक्षमार्ग / रत्नत्रय कहते हैं। जैन श्रावकों को धनार्जन में / भोग में / संयोग में / वियोग में अनासक्त/ वीतराग होना चाहिए। साधुओं को तो प्रसिद्धि में भी अनासक्त होना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में आत्मविश्लेषण करना चाहिए कि क्या वे धनार्जन से लेकर धार्मिक क्षेत्र में वीतरागी की जगह में वित्तरागी / धनाकांक्षी, सिद्धि के बदले में प्रसिद्धिकांक्षी तो

नहीं है ? यदि नहीं है तो जन्म जयन्ती मनाने के सच्चे अधिकारी है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति दृढ श्रद्धानी, विवेकी, कष्ट–सहिष्णु, दूरदृष्टि सम्पन्न, जैन सिद्धान्तों का गहन वैज्ञानिक अध्येता, वक्ता, विश्लेषक लेखक, स्वमत–परमत ज्ञाता के साथ–साथ समन्वयक, द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव के अनुसार जानने–मानने–कहने एवं चलने वाला, पर अनिन्दक गुणग्राही, कृतज्ञ, मिलनसार, नेतृत्व तथा संगठन गुण सम्पन्न, वाग्मी प्रत्युपन्न बुद्धि सम्पन्न आदि गुणों से युक्त है तो वे जन्म–जयन्ती मनाने के अधिक योग्य है।

जन्म–जयन्ती मनाना तब सफल होगा जब महावीर को मानने वाले परस्पर में सहिष्णु होंगे, मांस, शराब, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, हिंसात्मक प्रसाधन की वस्तुओं का सेवन, उत्पादन, निर्माण, विक्रय नहीं करेंगे, अन्यायपूर्ण धन का उपार्जन नहीं करेंगे, दिखावा, आडम्बर, विलासपूर्ण जीवन के लिए धन–समय–श्रम का दुरुपयोग न करके आत्मकल्याण, धार्मिक कार्य पर सेवा में सदुपयोग करेंगे।

C वैश्विक सत्य समता-सुख शान्ति के लिए

www.jainkanknandhi.org

ॐ ह्रीं सत्य साम्य सुखाय नमो नमः।

शान्ति के इच्छुक, सत्यनिष्ठ, उदारमना, सहअस्तित्व के पक्षधर, विश्वबंधुत्व के पोषक विश्व के सकल मानव समाज को सादर, सनम्र, सुस्वागतम् / प्रणाम / नमोस्तु /जयजिनेन्द्र!

व्यक्ति से लेकर समिष्टि, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र, विश्व तक, सत्य, न्याय, उदारता, भातृभाव, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सेवा, त्याग, सहिष्णुता के मार्ग पर चलकर सुख, शांति, प्रगति, समृद्धि प्राप्त करें ऐसी महान् उदात्त भावना से प्रेरित होकर यह www.jainkanknandhi.org इंटरनेट का शुभारम्भ हुआ है। अतः यह इंटरनेट विश्व का, विश्व के द्वारा है तथा विश्व के लिए समर्पित है।

इसके द्वारा सर्वज्ञ, सवदर्शी, वीतराग, हितोपदेशी, पूर्ण अहिंसक, सर्वोदय–तीर्थ प्रवर्तक, अनेकान्तवादी 24 तीर्थंकरों के द्वारा प्रतिपादित, गणधरों द्वारा सम्पादित तथा परम्पराचार्यों द्वारा लिखित सत्य–तथ्य, सिद्धान्तों को अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, सिद्धान्तचक्रवर्ती, विश्वधर्म–प्रभाकर, ज्ञान–विज्ञान–दिवाकर, आचार्यरत्न श्री कनकनंदीजी द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक समीक्षात्मक साहित्य, लेख, प्रवचन,

शिविर, वैज्ञानिक संगोष्ठी, नीतिवाक्यों द्वारा विश्लेषित विषयों को विश्वकल्याणार्थ प्रचार–प्रसार करना हमारा उद्देश्य है।

सर्वज्ञ–सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् त्रिकालवर्ती लोकालोक के समस्त ज्ञेय / पदार्थ / द्रव्य / घटनाओं के जानने पर भी शब्द में सीमित शक्ति होने के कारण जितना जानते हैं उसका अनन्तवाँ भाग प्रतिपादन करते हैं। वे जितना प्रतिपादन करते हैं उनके प्रमुख शिष्य गणधर उसका अनन्तवाँ भाग समझते हैं तथा वे उसका अनन्तवाँ भाग सम्पादन / ग्रन्थित करते हैं। वह ज्ञान शिष्य–प्रतिशिष्य रूप से प्रवाहमान होता है। परन्तु वह अनन्त सम्पूर्ण ज्ञान कालक्रम से, बुद्धि लब्धि की कमी से, विदेशी बर्बर धर्मद्रोही विध्वंसकारी आक्रान्ताओं तथा स्वदेशी विध्वंसकारियों के कारण बहुत अंश में नष्ट–भ्रष्ट हो गया है। अभी हमारे पास प्रायः 2000 वर्षों से लिपिबद्ध कुछ ही ग्रंथों में यत्किंचित् वह ज्ञान उपलब्ध है परंतु जितना उपलब्ध है उसमें भी जो वर्णन मिलता है वह भी अद्भुत, अतुलनीय महत्वपूर्ण, महान् है। तब पूर्ण अनंतज्ञान में क्या होगा उसका एक सहज अनुमान लगाकर बुद्धि स्तंभित हो जाती है, जिज्ञासा प्रबल होती है, संकीर्णता विलय होती है, भाव उदार होता है, अहंकार चूर–चूर हो जाता है।

उपलब्ध ग्रंथों में वर्णित ''अनेकान्त सिद्धान्त एवं स्याद्वाद'' महान् वैज्ञानिक आइन्स्टिन के ''सापेक्षसिद्धान्त'' से भी अधिक व्यापक तथा पूर्ण है; ''भौतिक–रसायन एवं अणु सिद्धान्त'' आधुनिक विज्ञान से भी अधिक सूक्ष्म–व्यापक तथा पूर्णता को लिए हुए हैं। वैज्ञानिक डार्विन के जीवविज्ञान (विकासवाद) से भी श्रेष्ठ, भ्रांतिरहित जीव विज्ञान (जीव–समास, मार्गणास्थान) है, भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु के वनस्पति–विज्ञान से भी अधिक व्यापक वर्णन है; मनोवैज्ञानिक फ्रायड के मनो–विश्लेषण से भी अधिक सूक्ष्म, परिपूर्ण, भ्रांतिरहित ''लेश्या मनोविज्ञान, कषाय विश्लेषण, संज्ञा–प्रकरण है; आधुनिक परा मनोविज्ञान से भी चमत्कारपूर्ण गुणस्थान, ऋद्धियों का वर्णन है; आधुनिक खगोल से भी व्यापक लोक–अलोक का गाणितिय वर्णन है। आधुनिक गणित से अनंत सूक्ष्म तथा अनंत आयाम से अधिक लौकिक एवं अलौकिक गणित है; आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान से भी अधिक श्रेष्ठ ''सर्वांगीण सर्वोदय–शिक्षा मनोविज्ञान है'' कार्ल मार्क्स के साम्यवाद से भी श्रेष्ठ साम्यवाद (समता, अपरिग्रहवाद) है, आधुनिक पारिस्थिति कि से भी श्रेष्ठ पारिस्थितिकि (विश्वव्यवस्था, परस्परोपग्रहो जीवानाम्) है, महात्मा

गाँधी की अहिंसा एवं असहयोग से भी सूक्ष्म, शुद्ध, व्यापक अहिंसा एवं माध्यस्थ भाव है सुकरात, प्लेटो, अरस्तु के दर्शनशास्त्र एवं राजनीति से भी श्रेष्ठ दर्शनशास्त्र एवं राजनीति है। इसीप्रकार कार्य–कारण सिद्धान्त, क्रिया–प्रतिक्रिया सिद्धान्त, पर्यावरण सुरक्षा, कर्मसिद्धान्त, न्यायनीति, विश्वमैत्री–विश्वशान्ति, प्रगतिशीलता, प्रामाणिकता, चारित्र निष्ठा, आधुनिकता, समाजविज्ञान, चतुःआयाम सिद्धान्त, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्तता, गति सिद्धान्त, प्रकाश सिद्धान्त, आनुवांशिक सिद्धान्त आदि विश्व के सम्पूर्ण प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध सिद्धान्तों का वर्णन पाया जाता है। इसीलिए हम ऐसे महान् सिद्धान्तों को विश्व कल्याणार्थ प्रसार–प्रसार आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के आशीर्वाद, मार्गदर्शन, प्रेरणा से स्थापित ''धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान'' तथा ''धर्म दर्शन सेवा संस्थान'' के माध्यम से, उदार भाव से निःस्वार्थ रूप से कर रहे हैं।

हम सनम्र, सत्यनिष्ठ, उदारभाव से विश्व के सामने जैन–सिद्धान्त को आचार्यरत्न श्री कनकनंदीजी द्वारा सम्पादित, विश्लेषित विषय के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे हैं। हम किसी भी व्यक्ति, समिष्टि, राष्ट्र, जाति, धर्म, पंथ, परम्परा, रीति–रिवाज, विज्ञान, इतिहास, राजनीति, न्याय–नीति का विरोध नहीं कर रहे हैं। परंतु जैन–सिद्धान्त के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्वकल्याणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। यदि इसके माध्यम से किसी का भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से खण्डन होता है, चोट पहुँचती है तो भी हमने दूसरों के खण्डन के लिए या चोट पहुँचाने के लिए या नीचा दिखाने के लिए या अपमानित करने के उद्देश्य/ भाव से कुछ भी नहीं किया है परंतु जैन धर्म में वर्णित सत्य–तथ्यों को तथा आ.श्री के प्रायोगिक अनुभवों को उजागर करने के लिए ही किया है। तथापि यदि किसी को कष्ट पहुंचे उसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं तथा योग्य सुझाव को हम निशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा तथा अमूढ़दृष्टि होकर स्वीकार करेंगे, योग्य परिवर्तन भी केरंगे। दूसरे महानुभाव भी हमारे उद्देश्य को समझें तथा स्वअपूर्णता / गलतियों को भी जाने–माने तथा दूर करें तथा सत्य–समता–सुख–शान्ति को प्राप्त करें।

उपयुक्त उद्देश्य के साथ–साथ और भी एक महान् उद्देश्य है कि ''जो सत्य निष्ठ सत्य शोधक, सत्यजिज्ञासु, उदारमना वैज्ञानिक'' हैं जो कि स्वपुरुषार्थ के माध्यम से विश्व कल्याण के लिए शोध–बोध, आविष्कार नव–निर्माण का कार्य कर रहे हैं उन्हें मार्गदर्शन मिले, दिशा–बोध, दशा–बोध हो तथा तीव्रता से प्रगति

करें। इसके साथ–साथ विश्व को अपनी संकीर्णता / गलतियों का ज्ञान हो और धर्म की व्यापकता, वैज्ञानिकता, उदारता श्रेष्ठता, ज्येष्ठता का भी ज्ञान हो और ऐसे धर्म को जानकर, मानकर और आचरण करअनंत सुख, शांति, शक्ति, समता, क्षमता को प्राप्त करें।

किसी भी महानुभाव को किसी भी प्रकार की जिज्ञासा या प्रश्न / संदेह हो तो उसे हमें ई–मेल, पत्र, फोन या साक्षात् रूप से प्रगट कर सकते हैं। हम उसका उत्तर आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव के माध्यम से दिलाने का पूर्ण प्रयास करेंगे।

आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के कार्य, उनके द्वारा स्थापित ''धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध संस्थान'' तथा ''धर्म दर्शन सेवा संस्थान'' के कार्य तथा यह इंटरनेट विश्व कल्याणार्थ होने के कारण ही विश्व के प्रत्येक मानव से तन, मन, धन, समय से सहयोग चाहते हैं। सहयोग करने वाले महानुभाव सम्पर्क सूत्रों से सम्पर्क करें तथा सहायता पहुँचाये। हम उनका आभार मानेंगे। जो विशेष सहयोग करेंगे उन्हें हम सम्मानित करेंगे, उपाधि प्रदान केरंगे, आचार्यश्री कनकनंदीजी का साहित्य भेट करेंगे, आचार्यश्री के साहित्य में नाम, फोटो भी प्रकाशित करेंगे। यह इंटरनेट एक साथ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में उपलब्ध है।

सप्रेम– जय जिनेन्द्र ! नमोस्तु ! सत्यमेव जयते !!

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥''

निवेदक–

धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध संस्थान –
बड़ौत, मुजफ्फरनगर (यू.पी.) कोटा, सलुम्बर, उदयपुर (राज.) मुंबई (महा.) भारत
(01234) 62845, (0294) 440793, (0131) 450229
श्रीमती रत्नमाला जैन W/O डॉ. राजमल जी जैन (वैज्ञानिक)
4–5 आदर्श कॉलोनी, पुला–उदयपुर (राज.) फोन नं. : (0294) 440793

सत्य से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं, सद्व्यवहार से बढकर कोई नीति नहीं, समता की साधना से श्रेष्ठतम साधना अन्य नहीं, शान्ति से अधिक कोई सुख नहीं - आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

D महाकुंभ में भारतवासियों को संदेश

राष्ट्रप्रेमी, संतचरणानुरागी अशोक सिंघल को मेरा शुभ आशीर्वाद।

आपके द्वारा प्रेषित 6–1–2001 का पत्र प्राप्त हुआ। आपकी भावना के अनुसार यह आशीर्वादात्मक संदेश मैं प्रेषित कर रहा हूँ।

वैसे तो 6–7 महिनों से कुंभ मेला में मेरी उपस्थिति एवं उद्बोधन के लिए के.एल. गोधा, विश्व हिन्दू परिषद के अनेकों कार्यकर्ता, राष्ट्रीय स्वयं सेवक के अनेकों कार्यकर्ता मुझसे अनेकों बार साग्रहपूर्वक अनुरोध, अनुनय विनय कर रहे थे। यह कार्य महान्, पवित्र, उदात्त भावनाओं को लिए हुए होने पर भी मैं जो भारत में समग्र क्रांति के लिए अध्ययन, अनुसंधान, साहित्य लेखन, प्रवचन, शिविर, संगोष्ठी, इंटरनेट (www.jainkanaknandhi.org. E-mail-info@jainkanaknandhi.org.) आदि कार्य कर रहा हूँ इन सबकी व्यस्तता के कारण एवं समयाभाव से कुंभ मेला में आने के लिए समर्थ नहीं हो पाया। तथापि जो आप भारत को सजग, समर्थ, अहिंसक, शांतिमय बनाने के लिए गो–रक्षा, बूचड़खानों का एवं मांस निर्यात का निषेध कर रहे है उसके लिए मेरा पूर्ण हार्दिक आशीर्वाद एवं मंगल कामनाएं है। आप स्वउद्देश्य में सफल बनो ऐसी मेरी भावना है।

प्रिय ! अशोक सिंघल जी एवं महाकुंभ में उपस्थित समस्त साधुसंत, विचारक, लेखक, पत्रकार तथा महान् भारत के महान् संस्कृति, परम्परा के अनुयायी भारतियों को मेरा सनम्र संदेश यह है कि जब तक हम भारतीय लोग समग्रता से विचार करके व्यक्ति निर्माण से लेकर राष्ट्रजागरण नहीं करेंगे तब तक हमें किसी भी कार्य में सफलता सरलता से नहीं मिलेगी। प्रत्येक कार्य के अनेक पहलू, आयाम, कारक / कारण होते हैं। जब तक हम अनेकान्तात्मक, उदारवादी, सक्रिय, सजीव रचनात्मक कार्य व्यापक रूप में नहीं करेंगे तब तक भारत से हिंसा, भ्रष्टाचार, विषमता, अन्याय, शोषण, अंधविश्वास, पापाचार, आतंकवाद, विघटन आदि को दूर नहीं कर सकते हैं। इसके लिए हमें केवल भाषणबाजी, निष्क्रिय–अहिंसा, धार्मिक सड़ी–गली रीतिरिवाज, गुलामी की शिक्षा, अंधा कानून,स्वार्थपरक राजनीति पर्याप्त नहीं है। इसके लिए हमें ठोस रचनात्मक कार्य, सक्रिय अहिंसा यथा–सेवा, परोपकार, पशुपालन, वृक्षारोपण, ऊँच–नीच के भेदभाव से रहित सामाजिक, समरसता, वैज्ञानिक उदारवादी जीवन्त धर्म, नीतिपरक स्वावलम्बन–वैज्ञानिक शिक्षा, सजग–निष्पक्ष–शीघ्रतापरक न्याय व्यवस्था, देश सेवा–स्वार्थ

त्याग पूर्ण राजनीति आदि की आवश्यकता है। इसके लिए भारत में पुनः स्वतन्त्रता संग्राम में भी एक महान क्रांति, महान–परिवर्तन, महान् संग्राम, महान् बलिदान, महान साहस की आवश्यकता है। अनुभव में आता है कि भारत में जो भी कुछ सुधारात्मक कार्य हो रहे हैं वह पत्तों के सिंचन के समान काम हो रहा है। मूल के सिंचन का काम कम हो रहा है। इसलिए भारत रूपी वटवृक्ष मुरझाता जा रहा है। भारत में अच्छे विचारक, प्रतिभाशाली, कार्यकर्ताओं की भी कमी नहीं है परन्तु वह भी परस्पर में संगठित नहीं है किन्तु दुष्ट लोगों में संगठन है इसीलिए हर क्षेत्र, धर्म, सम्प्रदाय के सज्जनों को संगठित होकर समग्रता से अच्छे कार्यों के लिए क्रांति करने की आवश्यकता है। इसके लिए भी मैं सतत् सनम्र प्रयासरत हूँ। आप सभी भारत माता के सपूतों! जागो, भारत की महिमा, गरिमा, सभ्यता, संस्कृति को पहिचानो, गौरव अनुभव करो, निःस्वार्थरूप से संकीर्णता को त्याग करके निडर और स्वाभिमानी होकर इस महाकुंभ में प्रतिज्ञा लो कि हम भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने के लिए, सोने की चिड़िया बनाने के लिए तन, मन, धन समय से समर्पित होकर कार्य करेंगे। तभी इस महान् महाकुंभ मेला का प्रयोजन सिद्ध होगा। इस महाकुंभ में भारत रूपी कुंभ में सुख, शांतिमय अमृत लबालब भर करके आप्लावित हो जिससे संपूर्ण विश्व लाभान्वित हो सकें और गौरव के साथ भारत की महानता के सामने नतमस्तक हो सके।

पुनः भारत को महान् बनाने की मंगल, शुभ–भावना के साथ–

आचार्य कनकनन्दी

- यह एक दुःखदायी विचित्र विडम्बना है कि बाल्यकाल में जो सहजता, सरलता, मृदुता, पवित्रता आदि गुण होते हैं वे सब गुण आयु वृद्धि के साथ-साथ वृद्धि होने के विपरीत ह्रास होते जाते हैं और कुटीलता, धूर्तता, कठोरता, कामुकता, अपवित्रता आदि दुर्गुण वृद्धिंगत होते जाते हैं।

- जिस प्रकार चक्षु स्वयं को नहीं देखपाती है वैसा ही अविवेकी स्वयं के गुण-दोषों को नहीं देख पाता है।

- आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

शिक्षा में परिवर्तन के लिए सुझाव

सेवा में,

श्रीमान् डॉ. मुरली मनोहर जोशी

(भारत के केन्द्रिय मानव संसाधन मंत्री)

विषय : वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आयोजित चतुर्थ राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी में देश भर से पधारे शिक्षाविदों द्वारा शिक्षा के आमूलचूल परिवर्तन के लिये सुझावों को अमल में लाने हेतु विनम्र अपील।

श्रद्धेय महोदय,

उदयपुर में आयोजित उक्त संगोष्ठी (9–12 नवम्बर, 2000) में प्रकाश में आएं सुझाव आपकी ओर प्रेषित हैं।

1. बच्चों का शारीरिक आर्थिक एवं मानसिक शोषण नहीं होना चाहिए, शिक्षा आनन्दमय हो ताकि बच्चे शिक्षा ग्रहण करने के लिए जिज्ञासु बनें, जिद्दी नहीं।

2. पाठ्य पुस्तकों में नैतिक शिक्षा का समावेश होना चाहिये। नैतिक शिक्षा में धार्मिक संकीर्णता एवं कट्टरता न हो।

3. शिक्षक विद्यालयों में ऐसा आचरण करें ताकि आदर्श प्रस्तुत हो। उदाहरण के तौर पर बच्चों के सामने बीड़ी–सिगरेट–तम्बाकू इत्यादि का सेवन तथा अनैतिक आचरण वर्जित हो।

4. बच्चों को गृह कार्य कम से कम दिया जाएं ताकि पढ़ाई बोझिल न हो।

5. प्रायवेट स्कूलों में भी ज्यादा आडंबरप्रियता न हो। फैशन कम से कम हो।

6. शिक्षक घर के कार्य को विद्यालय में न करें। उदाहरणार्थ – विद्यालय में स्वेटर इत्यादि बुनने पर रोक।

7. मातृभाषा में बोलने वाले बच्चों को दंडित न किया जाए तथा ऐसे स्कूलों की मान्यता भी खत्म की जाएं क्योंकि इस प्रकार के दण्ड से बच्चों में मातृभाषा के प्रति अपराध बोध पैदा होता है।

8. शिक्षण शुल्क कम से कम हो।

9. पाठ्यपुस्तकों में अनावश्यक एवं अप्रयोजनभूत तथ्यों को शामिल न किया जाए।

10. पाठ्यपुस्तकों में पुनरावृत्ति को रोका जाए।

11. प्रायोगिक शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए ताकि शिक्षा में व्यावहारिकता आ सके।

12. ध्यान एवं योग शिक्षा का अनिवार्य अंग बने ताकि बौद्धिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का विकास हो सके एवं शरीर स्वस्थ रह सके।

13. विद्यालयों में बच्चों को न्यूनतम 5 वर्ष की आयु के पहले प्रवेश ही न दिया जाये।

14. सत्य-तथ्य से रहित विषय या विकृत विषयों का वर्णन पाठ्य पुस्तकों / पाठ्य-क्रम में न हो।

15. महान् गौरवपूर्ण भारतीय संस्कृति के विरुद्ध में भी किसी भी प्रकार की गतिविधियाँ विद्यालय में न हो।

आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि आप अपनी पद की गरिमा तथा शक्तियों का प्रयोग करते हुए उक्त सुझावों का पाठ्यक्रम में शामिल कराने का प्रयास कर इस संस्कृति पर महान उपकार करेंगे। ऐसी ही आशा के साथ

प्रार्थी

समस्त उपस्थित प्रतिभागी (प्रायः 30 शिक्षाविद्)

दानश्री परम शिरोमणि संरक्षक 'धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान' श्री रमेशचंदजी कोटड़िया मुम्बई निवासी आ. कनकनंदीजी से सपरिवार आशिर्वाद प्राप्त करते हुए

विज्ञानाचार्य – आचार्य
श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

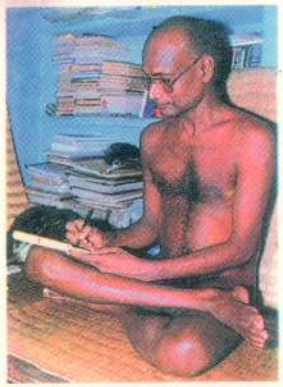

निरंतर साहित्य साधना
एवं
धर्म विज्ञान के समन्वय
में चिन्तनरत

(1) अनेकान्त सिद्धान्त (द्वि.सं.)
(2) अति मानवीय शक्ति (द्वि.सं.)
(3) अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग
(4) अनुभव चिन्तामणि
(5) आदर्श विहार–आहार–विचार
(6) आध्यात्म मनोविज्ञान (इष्टोपदेश)
(7) उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण
(8) ऋषभ पुत्र भरत से भारत (द्वि.सं.)
(9) कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.)
(10) क्रान्ति के अग्रदूत (द्वि.सं.)
(11) कथा सौरभ
(12) कथा सुमन मालिका
(13) ज्वलन्त शंकाओं का शीतलसमाधान (द्वि.सं.)
(14) जैन धर्मावलम्बी संख्या और उपलब्धि
(15) जीवन्त धर्म सेवा धर्म
(16) जिनार्चना (प्र.पु.) (द्वि.सं.)
(17) दिगम्बर जैन साधु नग्न क्यों
(हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दु) (१५वां संस्करण)
(18) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (प्र. पुष्प) (द्वि.सं.)
(19) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (प्र–द्वि–तृ.पुष्प)
(20) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (द्वि.सं.)
(21) ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.)
(22) नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान
(23) पुरुषार्थसिद्धयुपाय (अहिंसा का विश्वरूप)
(24) बंधु बन्धन के मूल
(25) भाव एवं भाग्य तथा अंग विज्ञान
(सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा)
(26) भविष्य फल विज्ञान (द्वि.सं.)
(27) मंत्र विज्ञान (द्वि.सं.)
(28) युग निर्माता भ. ऋषभदेव (हिन्दी/अंग्रेजी)
(29) विश्व विज्ञान रहस्य
(30) विश्व इतिहास
(31) विश्व धर्म विज्ञान (द्रव्यसंग्रह)
(32) विश्व धर्म के दस लक्षण
(33) शाश्वत समस्याओं का समाधान
(34) शांति क्रांति के विश्व नेता बनने के उपाय
(35) शकुन विज्ञान
(36) शोधपूर्ण ग्रंथ तथा ग्रंथकर्ता आ. कनकनंदीजी
(37) संगठन के सूत्र (द्वि.सं.)
(38) स्वप्न विज्ञान (द्वि.सं.)
(39) स्वतन्त्रता के सूत्र
(40) सत्य साम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार)
(41) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत)
(42) क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.)
(43) त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य (द्वि.सं.)
(44) Laishya Psychology
(45) Philosophy of Scintific Religion
(46) Fate&Efforts